मनबोधक श्लोक

**(समर्थ स्वामी रामदासकृत श्रीमनाचे श्लोक
का हिन्दी पद्यानुवाद)**

**पद्यानुवादकर्ता
जगन्नाथ व्यास**

श्री गुरुदेव डॉ. दाते अध्यात्म ट्रस्ट, खुडाला-फालना (राज.)

प्रकाशकः
श्री गुरुदेव डॉ. दाते अध्यात्म ट्रस्ट,
शिवाजी नगर, खुडाला-फालना-306116, जिला पाली (राजस्थान)

सर्वाधिकार सुरक्षितः
श्री गुरुदेव डॉ. दाते अध्यात्म ट्रस्ट,
खुडाला-फालना (राज.)

प्रथम आवृत्ति
कृष्ण जन्माष्टमी, दिनांक 17.8.2014
माताजी महाराज (श्रीमती मालती बाई वि. दाते) की पुण्यतिथि

मुद्रित प्रतियाँः 1000

मूल्यः ₹ 50

मुद्रकः
एवेनिर एंटरप्राइजेज, दिल्ली

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ सम्पूर्ण व्यय प्रो. के. जी. शर्मा ने ही स्वेच्छा से वहन किया है जो अनुकरणीय आदर्श है।

समर्पण

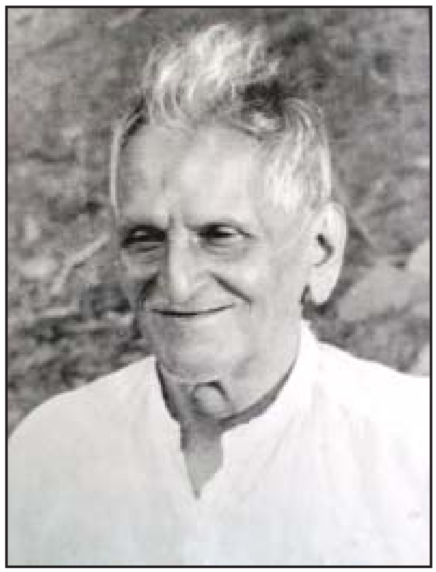

सद्गुरु समर्थ

जोधपुर वासी श्री दाते महाराज

(डॉ. विनायक हरि दाते)

के पावन चरणों

में

(तेरा तुझ को सौंपते क्या लागत है मोर)

॥ श्रीसद्‌गुरु प्रसन्न ॥

आमुख

समर्थ श्रीरामदास महाराज द्वारा रचित 'श्रीमनाचे श्लोक' नामक पुस्तक में मन को सम्बोधित करके 205 श्लोक मराठी भाषा में लिखे गये हैं जिनमें आध्यात्मिक जगत् के गुह्यतम तथ्यों का अभूतपूर्व विवेचन किया गया है। इस रचना में एक ओर वेदों और उपनिषदों के 'सार तत्व' परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सुगम 'भक्ति-पथ' का उत्तम निरूपण किया गया है तो दूसरी ओर नीतियुक्त पवित्र पारमार्थिक जीवन की प्रेरणा दी गई है तथा तीसरी ओर परमेश्वर के सगुण स्वरूप की गरिमा अक्षुण्ण रखते हुए निर्गुण ब्रह्म का महत्व प्रतिपादित किया गया है तो चौथी ओर सद्‌गुरु एवं सन्तों के लक्षणों का सूक्ष्म विश्लेषण भी किया गया है। पारमार्थिक अनुभव-जगत् के अपार सिन्धु को श्लोकरूपी सूक्ष्म बिन्दुओं में समाहित करने का असंभव कार्य समर्थ श्रीरामदास महाराज के अलावा और कौन कर सकता है जो महात्मा कबीर के शब्दों में चिन्तनीय है -"समन्द समाना बूँद में सो कत हेरा जाय।"

ऐसे गूढ़ 'मनाचे श्लोकों' का भावपूर्ण पद्यानुवाद करना भी कठिन चुनौती से कम नहीं है। किसी पद्य रचना का अन्य भाषा में गद्यानुवाद करना शब्द-सीमा की पाबन्दी से सदैव मुक्त होता है जबकि पद्यानुवाद में ऐसी स्वतंत्रता बिलकुल नहीं होती है। इसीलिए किसी पद्य-रचना का उसमें निहित भावों को ज्यों का त्यों जीवन्त रखते हुए अन्य भाषा में पद्यानुवाद करना विद्वता की कड़ी कसौटी माना जाता है। यदि वह पद्य-रचना आध्यात्मिक हो तो यह चुनौती और भी दुष्कर हो जाती है क्योंकि फिर इसके लिए केवल विद्वता और पाण्डित्य ही पर्याप्त नहीं हैं वरन् कठोर भक्ति-साधना-जनित अनुभवपरक विवेक भी निहायत जरूरी होता है। ये दोनों ही विलक्षण-विशिष्टताएँ परम श्रद्धेय स्व. श्रीमान् जगन्नाथ जी व्यास के अनूठे व्यक्तित्व में निहित थीं जिन्हें समीपता से देखने एवं समझने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। श्रीमान्

जगन्नाथ जी व्यास हिन्दी और अंग्रेजी भाषा के अच्छे विद्वान् थे। मराठी भाषा का ज्ञान उनको दर्शनशास्त्र के प्रख्यात प्रोफेसर (डॉ.) विनायक हरि दाते साहब के दीर्घकालीन सम्पर्क से ही प्राप्त हुआ था। वे प्रोफेसर साहब के सम्पर्क में 1956 में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में आये। इतना ही नहीं वे श्री दाते महाराज के आध्यात्मिक सच्छिष्य के रूप में भी घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। मराठी भाषा में लिखित महाराष्ट्रीय सन्तों के पारमार्थिक ग्रन्थों का श्री दाते महाराज के साहचर्य में सतत स्वाध्याय करने से श्रीमान् जगन्नाथ जी व्यास को मराठी भाषा का भी अच्छा ज्ञान हो गया था। श्री दाते महाराज ने समर्थ श्रीरामदास के 'मनाचे-श्लोकों' का 'मनोबोध' शीर्षक रचना में परमार्थ-पिपासुओं के लिए हिन्दी भाषा में उत्तम गद्यानुवाद किया है। उसी को हृदयंगम करके और वहीं से प्रेरणा लेकर श्रीमान् जगन्नाथ जी व्यास ने 'मनाचे-श्लोकों' का हिन्दी में प्रभावशाली पद्यानुवाद करने का निश्चय किया था।

श्रीमान् जगन्नाथ जी व्यास को श्री दाते महाराज के साथ एक ओर ज्ञान एवं दर्शन में दीर्घकाल तक रचने-पचने का अनुपम अवसर मिला था तो दूसरी ओर सद्‌गुरु समर्थ श्री दाते महाराज के संग लगभग 30 वर्षों तक भक्ति-साधना की प्रखर-अग्नि में तपने का अलभ्य लाभ भी प्राप्त हुआ था। अतएव श्रीमान् जगन्नाथ जी व्यास न केवल मूर्धन्य विद्वान् ही थे वरन् एक श्रेष्ठ सन्त भी थे। उनके सन्त-स्वरूप को बहुत ही कम लोग जान पाए क्योंकि वे अपने सन्त-स्वरूप से यवनिका हटने ही नहीं देते थे। उनका पारमार्थिक-चिन्तन पूर्णरूपेण अनुभवगम्य ही था इसीलिए समर्थ स्वामी रामदास के 'मनाचे-श्लोकों' का भावपूर्ण जीवन्त पद्यानुवाद करने में वे सफल हुए। इस पद्यानुवाद में श्लोकों के गूढ़ आध्यात्मिक भाव ज्यों के त्यों प्रभावी ढंग से निरूपित हुए हैं। यही इस पद्यानुवाद की स्तुत्य विचक्षणता है।

इस पद्यानुवाद में हिन्दी की कोमल-कान्त पदावली की नव्यता, आरोह-अवरोह की भव्यता, गूढ़ भावों की बोधगम्यता और लय-बद्धता की रम्यता अद्वितीय है। इसका शब्द-लालित्य, भाव-गाम्भीर्य एवं

काव्य-माधुर्य एक अछूता आदर्श है। काव्य के तीनों गुण ओज, माधुर्य और प्रसाद इसमें सहज दर्शनीय हैं। इसकी शैली की मनोहरता ने काव्य सौन्दर्य को और भी मनोरम बना दिया है। इस पद्यानुवाद में मूल-ग्रन्थ के पारमार्थिक गूढ़ तत्व सुबोध एवं सुग्राह्य हैं जिससे हिन्दी भाषा जिज्ञासुओं के लिए अलभ्य परमार्थ सहज लभ्य होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

डॉ. फूल सिंह देवड़ा,
सेवा-निवृत्त उप प्राचार्य,
जिला शिक्षा एवम् प्रशिक्षण संस्थान,
जिला पाली (राज.)

भूमिका

समर्थ स्वामी रामदास महाराज द्वारा रचित 'श्रीमनाचे श्लोक' भी उनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'दासबोध' की तरह ही आध्यात्मिक जगत् की अमूल्य धरोहर है। यद्यपि 'मनाचे श्लोक' का आकार-प्रकार लघु रूप में ही है तथापि परमार्थ का अनन्त सिन्धु इसमें समाहित है। आध्यात्मिक दृष्टि से ये अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के कारण ही श्री दाते महाराज के यहाँ 'काकड़-आरती' के बाद 25 'मनाचे श्लोकों' का नित्य पाठ होता था। श्री दाते महाराज ने इन 'मनाचे श्लोकों' का आध्यात्मिक अनुभवाधारित गुह्य अर्थ स्पष्ट करने के लिए हिन्दी भाषा में 'मनोबोध' नामक अनुपम ग्रन्थ भी लिखा है। उसी से प्रभावित एवं प्रेरित होकर स्व. श्रीमान् जगन्नाथ जी व्यास ने इन श्लोकों का हिन्दी भाषा में सुन्दर पद्यानुवाद किया है। इस सुन्दर पद्यानुवाद को मुद्रित करवा कर उनके सुपुत्र श्रीयुत् आनन्द कुमार व्यास ने निश्चित रूप से स्तुत्य कार्य किया है जो साधुवाद के पात्र हैं।

पूज्य-पाद दाते महाराज ने समर्थ रामदास, ज्ञानेश्वर एवं संत तुकाराम जैसे महाराष्ट्र के महान् संतो के मराठी भाषा के ग्रन्थों का हिन्दी भाषा में अत्युत्तम अनुवाद करके विशिष्ट संत-सेवा की है और हिन्दी भाषी भक्तों को पूर्ण लाभान्वित किया है। श्री दाते महाराज के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए पारमार्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनाओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाना इस ट्रस्ट का भी एक उद्देश्य है। 'मनाचे श्लोकों' का हिन्दी भाषा में पद्यानुवाद-प्रकाशन भी उसी कर्म-शृंखला की एक कड़ी है।

इस पद्यानुवाद का सस्वर पाठ करके, इसके रसास्वादन के द्वारा एवं इसके पारमार्थिक अर्थ की अनुभूति द्वारा मुमुक्षु अवश्य लाभान्वित होंगे।

ट्रस्ट मण्डल,
श्री गुरूदेव डॉ. दाते अध्यात्म ट्रस्ट,
खुडाला-फालना (राज.)

॥ श्रीराम॥

धन्यवाद

प्रस्तुत पुस्तक समर्थ स्वामी रामदास द्वारा रचित 'श्रीमनाचे श्लोक' का पद्यानुवाद है। सन्तों के द्वारा रचित ग्रन्थों में निहित गूढार्थ समझने की थोड़ी बहुत दृष्टि मेरे पिताजी स्व. श्री जगन्नाथ जी व्यास को अपने सद्गुरु श्री विनायक हरि दाते महाराज के निवास पर चलने वाले रविवारीय प्रोग्रामों, पारमार्थिक कार्यशालाओं एवं भक्ति-साधन के कार्यक्रमों में अनेक वर्षों तक उनके साथ कार्य करने से हुई थी और श्री दाते महाराज की उन पर असीम कृपा व स्नेह था। उनकी ही कृपा व आशीर्वाद से उनके द्वारा यह पद्यानुवाद आज से करीब चालीस वर्ष पूर्व सम्पन्न हुआ था। पिताजी का उद्देश्य इस पद्यानुवाद को न तो प्रकाशित करवाने का था और न ही धन अर्जित करने का, उन्होंने तो यह अनुवाद स्वान्तः सुखाय हेतु किया था और यही कारण था कि आज चालीस वर्ष तक यह अनुवाद हमारे घर पर ऐसे ही अछूता रखा रहा। एक बार जब मेरे द्वारा उनसे पूछा गया कि आप इस अनुवाद को प्रकाशित क्यों नहीं करवाना चाहते हैं तब उनका उत्तर था मैंने अनुवाद प्रकाशन हेतु नहीं किया। मेरी रुचि व इच्छा थी कि मैं इन श्लोकों का अनुवाद करूं और मैंने अनुवाद किया इससे ही मुझे सन्तोष है।

पिताजी के साथ के साधकों व गुरुबन्धुओं में से कुछ ऐसे साधक तथा गुरुबन्धु थे जिन्हें इस बात का पता था कि पिताजी ने 'श्रीमनाचे श्लोक' का पद्यानुवाद कर रखा है। उनके देहावसान के पश्चात् उन साधकों व गुरुबन्धुओं ने इस अनुवाद को प्रकाशित करवाने हेतु न केवल सुझाव दिए बल्कि प्रोत्साहित भी किया। प्रोत्साहित करने वाले साधकों व गुरु बन्धुओं में मुख्यतः आदरणीय स्व. श्री फौजमलजी पुरोहित, श्री महावीर प्रसादजी व्यास, श्री शिवशंकरजी जोशी, प्रो. के. जी. शर्मा, श्री विमलचन्दजी जैन, डॉ. फूल सिंहजी देवड़ा, श्री विपुल कोचर, श्री विजयनारायण व्यास, श्री कमल नारायण व्यास, श्री सूरजराजजी त्रिवेदी, मेरे अनुज भ्रातागण मकरन्द, अरुण व मुकेश व्यास एवम् मेरे पुत्र मुकुन्द व्यास और मेरी पुत्रियाँ श्रीमती माधवी जोशी, श्रीमती सुमन पुरोहित एवं सुश्री सुरुचि आदि हैं, इन सबका मैं अत्यन्त आभारी हूँ। अगर इन साधकों एवं मेरे परिवार के सदस्यों द्वारा

मुझे प्रोत्साहित नहीं किया गया होता तो शायद मैं इस पद्यानुवाद को प्रकाशित करवाने की सोच भी नहीं सकता था अतः सभी साधुवाद के पात्र हैं।

आदरणीय प्रो. के. जी. शर्मा ने पिताजी द्वारा हस्तलिखित समस्त 205 श्लोकों की कम्प्यटूरीकृत प्रति केवल उपलब्ध ही नहीं करवाई बल्कि आदरणीय डॉ. फूल सिंहजी देवड़ा के साथ अनेक बार बैठकर समस्त श्लोकों को अपनी पैनी दृष्टि से अवलोकन कर जहाँ कहीं भी शब्दों में छोटे-बड़े परिवर्तन की आवश्यकता लगी, परिवर्तन कर इस पद्यानुवाद को मूर्तरूप दिया इसलिए मैं इन दोनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

सुश्री योगीता शर्मा को धन्यवाद प्रेषित किए बिना मैं इस 'धन्यवाद' की इतिश्री नहीं कर सकता जिसने अपने पिताश्री प्रो. के. जी. शर्मा के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर इस पुस्तक को पूर्णता प्रदान करने में अनन्य सहयोग प्रदान किया। इतना ही नहीं उसने इस पुस्तक के जैकेट की डिजाइन करने में अद्वितीय योगदान दिया।

आदरणीय डॉ. फूल सिंहजी देवड़ा ने मेरी प्रार्थना पर पुस्तक का आमुख लिख हमें अनुगृहीत किया है। श्री गुरूदेव डॉ. दाते अध्यात्म ट्रस्ट के अध्यक्ष महोदय माननीय श्रीमान् शिवशंकर जी जोशी, एवं श्रीमान् विमलचन्दजी जैन तथा अन्य सभी ट्रस्टीगणों का मैं हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को ट्रस्ट से प्रकाशित करने की स्वीकृति प्रदान की।

मैं मुद्रक एवेनिर एंटरप्राइजेज, दिल्ली का इस पुस्तक की उत्तम छपाई एवम् समयावधि में उपलब्ध करवाने के लिए हृदय से धन्यवाद प्रेषित करता हूँ।

आनन्द कुमार व्यास

के-105,
हुडको कोलोनी, प्रतापनगर,
जोधपुर (राजस्थान)

इस पुस्तक में पाठकों की समझ एवं सुविधा के लिए बाएं पृष्ठों पर समर्थ स्वामी रामदास महाराज द्वारा रचित मराठी के मूल श्लोक तथा दाहिने पृष्ठों पर स्व. श्रीमान् जगन्नाथ जी व्यास द्वारा हिंदी पद्यानुवादित मनबोधक श्लोक दिए गए हैं।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ॥

श्रीसमर्थ रामदासस्वामिकृत

श्रीमनाचे श्लोक

(1)

गणाधीश जो ईश सर्वां गुणांचा।
मुळारंभ आरंभ तो निर्गुणाचा॥
नमूं शारदा मूळ चत्वार वाचा।
गमूं पंथ आनंत या राघवाचा॥

(2)

मना सज्जना भक्तिपंथेंचि जावें।
तरी श्रीहरी पाविजेतो स्वभावें॥
जनीं निंद्य तें सर्व सोडूनि द्यावें।
जनीं वंद्य तें सर्वभावें करावें॥

॥ श्री सद्गुरु प्रसन्न ॥

मनबोधक श्लोक

श्री समर्थ स्वामी रामदासकृत श्रीमनाचे श्लोक का हिंदी पद्यानुवाद

(1)

सभी गुणों के ईश और जो गणाधीश कहलाते हैं।
जिनको निर्गुण परब्रह्म का प्रथम रूप बतलाते हैं॥
करूँ नमन शारदा माँ को चारों वाणी का जो मूल।
करूँ गमन श्रीराघवपथ पर जो है केवल एक अनन्त॥

(2)

हे सज्जन मन भक्ति-पंथ पर चला यदि तूँ जायेगा।
तो श्रीहरि को सहज रूप से निश्चय ही पा जायेगा॥
निंद्य समझते जिसको साधु छोड़ उन्हें तूँ कर दे दूर।
वंद्य उन्हें जो होते सो तो सर्वभाव से कर भरपूर॥

(3)

प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा ।
पुढें वैखरीं राम आधीं वदावा ।।
सदाचार हा थोर सांडूं नये तो ।
जगीं तोचि तो मानवी धन्य होतो ।।

(4)

मना वासना दुष्ट कामा न ये रे ।
मना सर्वथा पापबुद्धि नको रे ।।
मना धर्मता नीति सोडूं नको हो ।
मना अंतरीं सार वीचार राहो ।।

(5)

मना पापसंकल्प सोडूनि द्यावा ।
मना सत्यसंकल्प जीवीं धरावा ।।
मना कल्पना ते नको वीषयांची ।
विकारें घडे हो जनीं सर्व ची ची ।।

(6)

नको रे मना क्रोध हा खेदकारी ।
नको रे मना काम नानाविकारी ।।
नको रे मना लोभ हा अंगिकारू ।
नको रे मना मत्सरू दंभ भारू ।।

(3)

रे मन चिन्तन राम-नाम का प्रभात काल में करता जा।
और शेष दिन वाणी से ही राम-नाम को रटता जा॥
छोड़ न देना सदाचार को इससे बड़ा न कोई अन्य।
इससे ही मानव का जीवन हो जाता इस जग में धन्य॥

(4)

रे मन दुष्ट वासना तेरी आयेगी नहीं कुछ भी काम।
रे मन केवल पाप बुद्धि में रखना मत तूँ अपना ध्यान॥
रे मन नीति और धर्म को छोड़ कभी मत देना तुम।
रे मन अन्तरतम में रख लो सदा विचार सार का तुम॥

(5)

रे मन पापपूर्ण जो संकल्प छोड़ उन्हें तूँ दे सम्पूर्ण।
और सदा संकल्प सत्य से जीवन को कर ले रे पूर्ण॥
रे मन रख मत अब कैसी भी इच्छा विषय-वासना में।
सोच, देख ले, विकृत होकर छिः छिः होगी जग भर में॥

(6)

नहीं नहीं मन क्रोध नहीं कर होता उससे भारी खेद।
नहीं नहीं रे नहीं काम भी इसमें भरे विकार अनेक॥
नहीं कभी भी रे मन मेरे करो लोभ को अंगीकार।
नहीं नहीं मन उठा नहीं तूँ मत्सर और दंभ का भार॥

(7)

मना श्रेष्ठ धारिष्ट जीवीं धरावें।
मना बोलणें नीच सोशीत जावें ॥
स्वयें सर्वदा नम्र वाचे वदावें।
मना सर्व लोकांसि रे नीववावें ॥

(8)

देहे त्यागितां कीर्ति मागें उरावी।
मना सज्जना हेचि क्रीया धरावी ॥
मना चंदनाचेपरी त्वां झिजावें।
परी अंतरीं सज्जना नीववावें ॥

(9)

नको रे मना द्रव्य तें पूढिलांचें।
अति स्वार्थबुद्धी न रे पाप सांचें ॥
घडे भोगणें पाप तें कर्म खोटें।
न होतां मनासारिखें दुःख मोठें ॥

(10)

सदा सर्वदा प्रीति रामीं धरावी।
दुखाची स्वयें सांडि जीवीं करावी ॥
देहेदुःख तें सूख मानीत जावें।
विवेकें सदा सस्वरूपीं भरावें ॥

(7)

रे मन धैर्य श्रेष्ठ है इसको धारण तो तूँ कर ले रे।
बोले नीच वचन तो कोई धीरज से वह सह ले रे।।
तुम तो बनकर नम्र सदा ही बोलो मीठी वाणी से।
और सभी लोगों को करना शीतल अपनी वाणी से।।

(8)

देह-त्याग करके भी जिनसे मिल जाता है यश निर्मल।
वो ही काम करो मन मेरे रहो उन्हीं पर तुम निश्चल।।
हे मन घिस चल घिस चल तूँ तो जैसे चन्दन घिस जाता।
सन्तजनों के मन को है सन्तोष इसी से मिल पाता।।

(9)

रे मन मत कर मत कर इच्छा कभी दूसरों के धन की।
अति ही स्वार्थ बुद्धि से होता रे मन केवल पातक ही।।
खोटे कर्म किये जो मनवा पड़े भोगना ही उनको।
मनचाहा जो हुआ नहीं तो दुःख होगा भारी तुम को।।

(10)

रे मन मेरे राम-रूप से प्रीति सदा तूँ करता जा।
झूठे सुख का लोभ छोड़कर राम-नाम को रटता जा।।
देह-दुःख तो केवल सुख है ऐसे तुम दो मन को धीर।
ऐसे करो विवेक कि जिससे सस्वरूप में होवो लीन।।

(11)

जगीं सर्व सूखी असा कोण आहे ।
विचारें मना तूंचि शोधूनि पाहें ।।
मना त्वांचि रे पूर्वसंचीत केलें ।
तयासारिखें भोगणें प्राप्त झालें ।।

(12)

मना मानसीं दुःख आणूं नको रे ।
मना सर्वथा शोक चिंता नको रे ।।
विवेकें देहेबुद्धि सोडूनि द्यावी ।
विदेहीपणें मुक्ति भोगीत जावी ।।

(13)

मना सांग पां रावणा काय झालें ।
अकस्मात तें राज्य सर्वै बुडालें ।।
म्हणोनी कुडी वासना सांडिं वेगीं ।
बळें लागला काळ हा पाठिलागीं ।।

(14)

जिवा कर्मयोगें जनीं जन्म झाला ।
परी शेवटीं काळमूखीं निमाला ।।
महाथोर ते मृत्युपंथेंचि गेले ।
कितीएक ते जन्मले आणि मेले ।।

(11)

सोच विचार कर करे शोध तो पता तुम्हें लग जायेगा।
'सर्व सुखी हैं' ऐसा किसको कौन कहाँ कह पायेगा।।
जो कुछ पूर्वजन्म के संचित कर्म तुम्हारे किये हुए।
तद्नुसार भोगने पड़ते लेख विधि के लिखे हुए।।

(12)

रे मनवा तूँ मन में अपने दु:ख कभी मत करना रे।
रे मन व्यर्थ शोक और चिन्ता दूर इन्हें तूँ रखना रे।।
कर विवेक और देह बुद्धि का त्याग सदा ही कर ले रे।
बन विदेही भोग मुक्ति का इसी भाँति तूँ कर ले रे।।

(13)

रे मन बोल बता दे तूँ ही रावण की क्या दशा हुई।
अकस्मात् ही राज्य गया व गई सम्पदा भी सारी।।
इसीलिए मन तोड़ शीघ्र ही दुष्ट वासना का घेरा।
देख देख रे दल-बल लेकर यम करता पीछा तेरा।।

(14)

देख जीव तो कर्म-योग से जीवन धारण करता है।
पर उसका अन्त यही वह ग्रास काल का बनता है।।
बड़े-बड़े जो लोग हुए वे गये मृत्यु के मुख में ही।
जन्मे थे ऐसे कितने ही पर मरकर ही वे गये सभी।।

(15)

मना पाहतां सत्य हे मृत्युभूमी।
जिता बोलती सर्वही जीव मी मी ।।
चिरंजीव हें सर्वही मानिताती।
अकस्मात सांडूनियां सर्व जाती ।।

(16)

मरे एक त्याचा दुजा शोक वाहे।
अकस्मात् तोही पुढें जात आहे ।।
पुरेना जनीं लोभ रे क्षोभ त्यातें।
म्हणोनी जनीं मागुता जन्म घेतें ।।

(17)

मनीं मानव व्यर्थ चिंता वहातें।
अकस्मात होणार होऊनि जातें ।।
घडे भोगणें सर्वही कर्मयोगें।
मतीमंद तें खेद मानी वियोगें ।।

(18)

मना राघवेंवीण आशा नको रे।
मना मानवाची नको कीर्ति तूं रे ।।
जया वर्णिती वेद शास्त्रें पुराणें।
तथा वर्णितां सर्वही श्लाघ्यवाणें ।।

(15)

देख समझ ले हे मन मेरे यह तो मृत्युभूमि केवल।
जीव सभी ही मैं मैं करते होकर अहंकार के वश॥
मान रहे ये सभी स्वयं को चिरंजीवी और अमर।
अकस्मात् ही छोड़ सभी को जाते हैं वे यम के घर॥

(16)

मरता एक दूसरा उसका करता शोक महाभारी।
अकस्मात् फिर वह भी जाता उसी मार्ग पर संसारी॥
तो भी लोभ-क्षोभ जन-मन का कभी नहीं पूरा होता।
यही अर्थ कि जन्म-मरण का बीज इसी से वह बोता॥

(17)

मानव-मन भी मूरख कैसा व्यर्थ सदा चिन्ता करता।
जाता भूल सदा ही कैसे होने वाला होकर रहता॥
कर्म योग से मिलता सब कुछ और भोगना पड़ता है।
हो वियोग तो मतिमंद ही खेद युक्त मन करता है॥

(18)

रे मन राघव बिना किसी की आशा मत तूँ धरना रे।
मानव कीर्ति नहीं कभी भी अपने मुख से करना रे॥
देखो जिनका वर्णन करते वेद शास्त्र और सभी पुराण।
उनका ही तूँ वर्णन कर ले उससे होगा महिमावान॥

(19)

मना सर्वथा सत्य सांडूं नको रे।
मना सर्वथा मिथ्य मांडूं नको रे ।।
मना सत्य तें सत्य वाचे वदावें।
मना मिथ्य तें मिथ्य सोडूनि द्यावें ।।

(20)

बहू हिंपुटी होइजे मायपोटीं।
नको रे मना यातना तेचि मोठी ।।
निरोधें पचे कोंडिलें गर्भवासी।
अधोमूख रे दुःख त्या बाळकासी ।।

(21)

मना वासना चूकवीं येरझारा।
मना कामना सांडिं रे द्रव्यदारा ।।
मना यातना थोर हे गर्भवासीं।
मना सज्जना भेटवीं राघवासी ।।

(22)

मना सज्जना हीत माझें करावें।
रघूनायका दृढ चित्तीं धरावें ।।
महाराज तो स्वामि वायूसुताचा।
जना उद्धरी नाथ लोकत्रयाचा ।।

(19)

सत्य पंथ का त्याग कभी भी करना मत हे मन मेरे।
नहीं, नहीं, मिथ्या का आश्रय नहीं कभी भी लेना रे॥
हे मन जो है सत्य उसे कर सत्यभाव से अंगीकार।
और मिथ्य को मिथ्य जानकर त्याग उसे तूँ बारम्बार॥

(20)

सोच उदर में माता के तो होता कैसा दुःखभारी।
नहीं चाहिए हमको मनवा इसमें पीड़ा भयकारी॥
गर्भवास में घिर जाने पर देख श्वास भी रुक जाता।
बाहर आता बाल अधोमुखी कैसे कैसे दुःख पाता॥

(21)

रे मन कर नि:शेष वासना जन्म-मरण से जाना छूट।
रे मन धन और स्त्री की भी इच्छा से तूँ रहना दूर॥
रे मन यही कामना तो है गर्भवास का कारण रेऽ।
छूटें इससे इसीलिए कर भेंट अभी रघुनायक से॥

(22)

रे सज्जन मन देख भला तूँ हित मेरा तो कर दे रे।
दृढ़भाव से रघुनायक को चित्त में अपने धर ले रे॥
ये हैं वे ही महाराज जो स्वामी वायुसुत के हैं।
तीन लोक के नाथ और ये भक्तों के उद्धारक हैं॥

(23)

न बोलें मना राघवेंवीण कांहीं ।
जनीं वाउगें बोलतां सूख नाहीं ॥
घडीनें घडी काळ आयुष्य नेतो ।
देहांती तुला कोण सोडूं पहातो ॥

(24)

रघुनायकावीण वायां शिणावें ।
जनासारिखें व्यर्थ कां वोसणावें ॥
सदा सर्वदा नाम वाचे वसों दे ।
अहंता मनीं पापिणी ते नसों दे ॥

(25)

मना वीट मानूं नको बोलण्याचा ।
पुढें मागुता राम जोडेल कैंचा ॥
सुखाची घडी लोटतां सूख आहे ।
पुढें सर्व जाईल कांहीं न राहे ॥

(26)

देहेरक्षणाकारणें यत्न केला ।
परी शेवटीं काळ घेऊनि गेला ॥
करी रे मना भक्ति या राघवाची ।
पुढें अंतरी सोडिं चिंता भवाची ॥

(23)

रे मन राघव बिना कहीं तूँ और नहीं कुछ बोला कर।
बातें व्यर्थ सभी लोगों से इनमें सुख मत खोजा कर ।।
क्षण प्रति क्षण ये आयु तेरी महाकाल का ग्रास बने।
जब होगा देहांत बता तूँ तुझ को कौन सहाय करे ।।

(24)

रघुनायक के बिना व्यर्थ ही सोच मना क्यों होता श्रान्त।
और दूसरे लोगों सा तूँ बड़ बड़ कर क्यों बनता भ्रान्त ।।
सदा सर्वदा नाम राम का वाणी में तूँ बसने दे।
अहंकार जो पापरूप है नष्ट उसे तो कर दे रे ।।

(25)

रे मन बुरा मानना मत तूँ कहता मैं जो तुम से बात।
खोता समय अभी तूँ अपना जोड़ेगा कब प्रभू से साथ ।।
बीती सुख की घड़ी भला फिर क्या सुख ही आ पाता है।
आगे चल कर जाता सब कुछ रह कुछ भी नहीं जाता है ।।

(26)

रक्षण देह का करने के हित यत्न अनेकों करते हैं।
पर होता क्या देख अन्त में ग्रास काल का बनते हैं ।।
रे मन इसीलिए कर ले तूँ भक्ति अभी से राघव की।
और छोड़ दे अन्तर से तूँ चिन्ता इस भवसागर की ।।

(27)

भवाच्या भयें काय भीतोस लंडी ।
धरीं रे मना धीर धाकासि सांडीं ।।
रघुनायकासारिखा स्वामि शीरीं ।
नुपेक्षी कदा कोपल्या दंडधारी ।।

(28)

दिनानाथ हा राम कोदंडधारी ।
पुढें देखतां काळ पोटीं थरारी ।।
मना वाक्य नेमस्त हें सत्य मानीं ।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।।

(29)

पदीं राघवाचे सदा ब्रीद गाजे ।
बळें भक्तरीपूशिरीं कांबि वाजे ।।
पुरी वाहिली सर्व जेणें विमानीं ।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।।

(30)

समर्थाचिया सेवका वक्र पाहे ।
असा सर्व भूमंडळीं कोण आहे ।।
जयाची लिला वर्णिती लोक तीन्हीं ।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।।

(27)

भवसागर के भय से रे मन कायर तूँ क्यों डरता है।
चिन्ता छोड़ सदा ही मन में धीरज क्यों नहीं धरता है॥
तेरे सिर पर हाथ स्वामी का वो भी रघुनायक जैसे।
होकर क्रोधित धरे दण्ड तो यम भी उपेक्षा नहीं करते॥

(28)

धनुष लिये श्रीराम, खड़े वे दीनानाथ कहाते हैं।
देख जिन्हें महाकाल स्वयं भी काँप-काँप से जाते हैं॥
हे मन मेरी वाणी को तूँ सत्य मान मन में धर ले।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते॥

(29)

विरद सदा ही श्रीराघव का चरणों से उनके बजता।
पूरे बल से धन्वा उनका भक्त-शत्रु पर जा तनता॥
विमान मार्ग से पुरी अयोध्या स्वर्ग लोक को ले जाते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते॥

(30)

देख बता इस भूमण्डल पर हो सकता ऐसा है कौन।
देखें वक्र दृष्टि से उनको जो समर्थ के सेवक मौन॥
वर्णन जिनकी लीला का है तीनों लोक किया करते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते॥

(31)

महासंकटीं सोडिले देव जेणें।
प्रतापें बळें आगळा सर्व गूणें॥
जयातें स्मरे शैलजा शूलपाणी।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

(32)

अहल्या शिळा राघवें मुक्त केली।
पदीं लागतां दिव्य होऊनि गेली॥
जया वर्णितां शीणली वेदवाणी।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

(33)

वसे मेरुमांदार हे सृष्टिलीळा।
शशी सूर्य तारांगणें मेघमाळा॥
चिरंजीव केले जनीं दास दोन्हीं।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

(34)

उपेक्षा कदा रामरूपीं असेना।
जिवां मानवां निश्चयो तो वसेना॥
शिरीं भार वाहेन बोले पुराणीं।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

(31)

संकट महा जान देवों पर जिसने उन्हें छुड़ाया था।
बल प्रताप व सभी गुणों में वही श्रेष्ठ कहलाया था।।
उमा और शंकर भी सुमिरन जिनका सदा किया करते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।।

(32)

शिला रूप थी बनी अहिल्या राघव ने की उसको मुक्त।
लगते ही चरणों से उनके दिव्य रूप से हो गई युक्त।।
थक जाते हैं स्वयम् वेद भी वर्णन जब उनका करते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।।

(33)

मेरु और मांदार आदि सब जिनकी सृष्टि-लीला है।
सूर्य शशि तारागण बादल ये सब उनकी क्रीड़ा है।।
अमर किया दोनों दासों को नहीं कभी वे मर सकते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।।

(34)

राम-रूप तो अपने जन की कभी उपेक्षा नहीं करता।
मानव तुच्छ बड़ा ही वह तो मन में निश्चय नहीं धरता।।
मेरे शिर पर भार भक्त का स्वयम् पुराण में वे कहते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।।

(35)

असे हो जया अंतरीं भाव जैसा।
वसे हो तया अंतरीं देव तैसा॥
अनन्यास रक्षीतसे चापपाणी।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

(36)

सदा सर्वदा देव सन्नीध आहे।
कृपाळूपणें अल्प धारिष्ट पाहे॥
सुखानंद आनंद कैवल्यदानी।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

(37)

सदा चक्रवाकासि मार्तंड जैसा।
उडी घालितो संकटीं स्वामि तैसा॥
हरीभक्तिचा घाव गाजे निशाणीं।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी॥

(38)

मना प्रार्थना तूजला येक आहे।
रधूनाथ थक्कीत होऊनि पाहे॥
अवज्ञा कदा हो यदर्थी न कीजे।
मना सज्जना राघवीं वस्ति कीजे॥

(35)

भाव देव के लिए हमारे मन में जैसा आता है।
स्वयम् देव भी रूप वही धर अन्तर में बस जाता है।।
अनन्य भक्त की रक्षा के हित धनुष सदा हैं वे धरते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।।

(36)

देव हमारे निकट सर्वदा और सदा ही रहते हैं।
कृपा दृष्टि से देख रहे हम कितना धीरज रखते हैं।।
सुखानन्द औ' आनन्द दाता दान मोक्ष का वे करते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।।

(37)

चक्रवाक के लिए सदा ही सूर्य दौड़ कर आता है।
भक्तों के संकट में वैसे कूद स्वामी भी जाता है।।
हरि भक्ति की महिमा का ये घोष गूँज कर यह कहते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।।

(38)

हे मन तुमसे एक प्रार्थना करनी है मुझको तो यह।
चकित सा होकर रघुराज के दर्शन तूँ करता ही रह।।
इस दृष्टि से देख अवज्ञा नहीं कभी भी होने दे।
हे सज्जन मन वस्ती तेरी राम-रूप में होने दे।।

(39)

जया वर्णिती वेद शास्त्रें पुराणें ।
जयाचेनि योगें समाधान बाणे ।।
तयालागिं हें सर्व चांचल्य दीजे ।
मना सज्जना राघवीं वस्ति कीजे ।।

(40)

मना पाविजे सर्वही सूख जेथें ।
अती आदरें ठेविजे लक्ष तेथें ।।
विवेकें कुडी कल्पना पालटीजे ।
मना सज्जना राघवीं वस्ति कीजे ।।

(41)

बहू हिंडतां सौख्य होणार नाहीं ।
शिणावें परी नातुडे हीत कांहीं ।।
विचारें बरें अंतरा बोधवींजे ।
मना सज्जना राघवीं वस्ति कीजे ।।

(42)

बहुतांपरी हेंचि आतां धरावें ।
रघुनायका आपुलेंसें करावें ।।
दिनानाथ हें तोडरीं ब्रीद गाजे ।
मना सज्जना राघवीं वस्ति कीजे ।।

(39)

पुराण वेद और शास्त्र सभी ही जिनका वर्णन करते हैं।
जिनसे योग प्राप्त कर सब ही समाधान मन धरते हैं॥
उनको ही चंचलता सारी हे मन अर्पण कर दे रे।
हे सज्जन मन वस्ती तेरी राम-रूप में होने दे॥

(40)

हे मन सभी सुखों की प्राप्ति जहाँ पहुँच कर हो जाये।
कर ऐसा कि अति आदर से ध्यान वहीं पर जम जाये॥
कर विवेक व पलट कल्पना गर्हित को धो लेने दे।
हे सज्जन मन वस्ती तेरी राम-रूप में होने दे॥

(41)

जो भटकेगा इधर-उधर तो नहीं सुखी हो पायेगा।
हो जाये तूँ श्रान्त भले ही हाथ नहीं कुछ आयेगा॥
अन्तर में तूँ कर विचार और बोध हृदय में होने दे।
हे सज्जन मन वस्ती तेरी राम-रूप में होने दे॥

(42)

बहुत कहूँ क्या सब बातों की सार बात तो ये ही है।
अपना कर ले रघुनायक को हितू तुम्हारे वे ही हैं॥
नूपुर से ध्वनि आती है वे दीन जनों के हो लेते।
हे सज्जन मन वस्ती तेरी राम-रूप में होने दे॥

(43)

मना सज्जना एक जीवीं धरावें ।
जनीं आपुलें हीत तूवां करावें ।।
रघुनायकावीण बोलों नको हो ।
सदा मानसीं तो निजध्यास राहो ।।

(44)

मना रे जनीं मौनमुद्रा धरावी ।
कथा आदरें राघवाची करावी ।।
नसे राम तें धाम सोडूनि द्यावें ।
सुखालागिं आरण्य सेवीत जावें ।।

(45)

जयाचेनि संगें समाधान भंगे ।
अहंता अकस्मात येऊनि लागे ।।
तये संगतीची जनीं कोण गोडी ।
जिये संगतीनें मति राम सोडी ।।

(46)

मना जे घडी राघवेंवीण गेली ।
जनीं आपुली ते तुवां हानि केली ।।
रघुनायकावीण तो शीण आहे ।
जनीं दक्ष तो लक्ष लावूनि पाहे ।।

(43)

हे सज्जन मन एक बात तूँ अन्तर में धर ले मेरी।
मेरा अपना हित हो जाये मिले सहायता यदि तेरी ।।
बिना नाम रघुनायक के तूँ शब्द एक मत बोला कर।
मानस में निजध्यास रहे औ' मग्न उसी में डोला कर ।।

(44)

रे मन देख यहाँ पर तुझको मुद्रा मौन ही धरनी है।
आदरपूर्वक प्रेमभाव से कथा राम की करनी है ।।
जिस घर में हैं राम नहीं तो छोड़ चला चल तूँ उसको।
वन में जाकर रह लेगा तो सुख मिल जाये तुझको ।।

(45)

जिनके संग रहने से होता तेरे समाधान में भंग।
और अचानक अहंकार की उठने लगती एक तरंग ।।
उन लोगों के साथ तुम्हारी देख भला कैसी प्रीति।
जिनके कारण छूटी पड़ती राम-चरण से तव प्रीति ।।

(46)

हे मन जो क्षण बीत गया है बिना ध्यान रघुनायक के।
समझ उसी क्षण कर ली तूँ ने हानि तेरे ही कर से ।।
श्रीराघव के बिना सभी कुछ व्यर्थ यहाँ पर होता है।
वही दक्ष है जिसका लक्ष्य सदा राम पर होता है ।।

(47)

मनीं लोचनीं श्रीहरी तोचि पाहे ।
जनीं जाणता भक्त होऊनि राहे ॥
गुणीं प्रीति राखे क्रमू साधनाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥

(48)

सदा देवकाजीं झिजे देह ज्याचा।
सदा रामनामें वदे नित्य वाचा॥
स्वधर्मेंचि चाले सदा उत्तमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥

(49)

सदा बोलण्यासारिखें चालताहे ।
अनेकीं सदा एक देवासि पाहे ॥
सगूणीं भजे लेश नाहीं भ्रमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥

(50)

नसे अंतरी कामकारी विकारी।
उदासीन जो तापसी ब्रह्मचारी॥
निवाला मनीं लेश नाहीं तमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥

(47)

बाहर और अन्तर में दर्शन एक हरि के करता है।
ज्ञानी होने पर भी जो नर भक्त बना रह सकता है।।
जिसकी प्रीति सगुण देव में साधन का क्रम चलता है।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में होता है।।

(48)

देव-कार्य में देह सदा ही घिसती जिसकी रहती है।
राम-नाम का घोष सदा ही वाणी जिसकी करती है।।
स्व-धर्म का करता पालन नाम बीज ही बोता है।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में होता है।।

(49)

जैसे बोले वैसे ही वह काम सदा ही करता है।
देखे देव अनेकों पर वह ध्यान एक पर धरता है।।
भजन सगुण का ही चलता पर लेशमात्र नहीं भ्रम होता।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में है होता।।

(50)

नष्ट हुआ अन्तर से जिसके युक्त विकारों से जो काम।
उदासीन जो महातपस्वी ब्रह्मचारी, रहे अभिराम।।
शान्त हुआ है अन्तर जिसका तम का भार नहीं ढोता।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में है होता।।

(51)

मदें मत्सरें सांडिली स्वार्थबुद्धी ।
प्रपंचीक नाहीं जयातें उपाधी ।।
सदा बोलणें नम्र वाचा सुवाचा ।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ।।

(52)

क्रमी वेळ जो तत्वचिंतानुवादें ।
न लिंपे कदा दंभ वादें विवादें ।।
करी सूखसंवाद जो ऊगमाचा ।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ।।

(53)

सदा आर्जवी प्रीय जो सर्व लोकीं ।
सदा सर्वदा सत्यवादी विवेकी ।।
न बोले कदा मिथ्य वाचा त्रिवाचा ।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ।।

(54)

सदा सेवि आरण्य तारुण्यकाळीं ।
मिळेना कदा कल्पनेचेनि मेळीं ।।
चळेना मनीं निश्चयो दृढ ज्याचा ।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ।।

(51)

मद, मत्सर और स्वार्थ बुद्धि को छोड़ किया है उसने दूर।
प्रापंचिक जो रही उपाधी उसको कर डाला निर्मूल।।
वाचा उसकी नम्र सुहावनी वाणी से मीठा होता।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में है होता।।

(52)

अपना समय लगाता है वह तत्-चिन्तन-अनुवाद में।
लेश मात्र भी दंभ नहीं है कैसे फँसे विवाद में।।
सुखपूर्वक संवाद उसी का बीज सृष्टि का जो बोता।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में है होता।।

(53)

सरल और निष्कपट रहे वह प्रिय सबका बन जाता है।
सदा सर्वदा रहे विवेकी जुड़ा सत्य से नाता है।।
वाणी के तीनों भेदों से मिथ्य भाव है वह खोता।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में है होता।।

(54)

तरुण अवस्था में भी उसको प्रिय लगता है वन में वास।
उसके मन का नहीं कल्पना से होता है कभी मिलाप।।
डिगता नहीं कभी मन उसका निश्चय पर वह दृढ़ होता।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में है होता।।

(55)

नसे मानसीं नष्ट आशा दुराशा।
वसे अंतरीं प्रेमपाशा पिपाशा ॥
ऋणी देव हा भक्तिभावें जयाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ॥

(56)

दिनाचा दयाळू मनाचा मवाळू।
स्नेहाळू कृपाळू जनीं दास पाळू ॥
तया अंतरीं क्रोध संताप कैंचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा ॥

(57)

जगीं होईजे धन्य या रामनामें।
क्रिया भक्ति ऊपासना नित्य नेमें ॥
उदासीनता तत्त्वता सार आहे।
सदा सर्वदा मोकळी वृत्ति राहे ॥

(58)

नको वासना वीषयीं वृत्तिरूपें।
पदार्थीं जडे कामना पूर्वपापें ॥
सदा राम निष्काम चिंतीत जावा।
मना कल्पनालेश तोही नसावा ॥

(55)

रहती नहीं है जिसके मन में आशा और दुराशा भी।
बसती जिसके अन्तरतम में प्रेमभरी पिपासा ही॥
स्वयं देव भी ऋणी उसी के भक्तिभाव से है होता।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में है होता॥

(56)

सत्य सत्य ही दया दीन पर करने वाला वो ही है।
मन से कोमल स्नेह से पूरा करता कृपा तो सो ही है॥
संताप-क्रोध क्या उसके मन में कहो कभी हो सकता है।
सर्वोत्तम का वही दास तो धन्य जगत में होता है॥

(57)

धन्य जगत में होता है वो राम-नाम का ले आधार।
नित-नेम से भक्ति उपासना और करे क्रिया साचार॥
सार रूप से रहती उसकी उदासीनता अति प्रचण्ड।
और उसी में पाई जाती उदारवृत्ति भी सदा अखण्ड॥

(58)

रे मन होना नहीं कभी भी विषय वासना में तूँ लिप्त।
पूर्व पाप के कारण ही मन होता विषयों में आसक्त॥
इसीलिए रट राम-नाम को होगा उससे ही निष्काम।
अन्य कल्पना आवे मन में तो उनका कर देना नाश॥

(59)

मना कल्पना कल्पितां कल्पकोटी ।
नव्हे रे नव्हे सर्वथा रामभेटी ॥
मनीं कामना राम नाहीं जयाला ।
अती आदरें प्रीति नाहीं तयाला ॥

(60)

मना राम कल्पतरू कामधेनू ।
निधि सार चिंतामणी काय वानूं ॥
जयाचेनि योगें घडे सर्व सत्ता ।
तया साम्यता कायसी कोण आतां ॥

(61)

उभा कल्पवृक्षातळीं दुःख वाहे ।
तया अंतरी सर्वदा तेंचि राहे ॥
जनीं सज्जनीं वाद हा वाढवावा ।
पुढें मागुता शोक जीवीं धरावा ॥

(62)

निजध्यास तो सर्व तूटोनि गेला ।
बळें अंतरीं शोक संताप ठेला ॥
सुखानंद आनंद भेदें बुडाला ।
मनीं निश्चयो सर्व खेदें उडाला ॥

(59)

रे मन करे कल्पना जो तूँ कोटि वर्ष तक बारम्बार।
नहीं नहीं रे नहीं मिलेगी भेंट राम की जीवाधार।।
जिसके मन में बसे कामना वहाँ राम का वास नहीं।
प्रीति और आदर की बोलो हो सकती है बात कहीं।

(60)

हे मन वर्णन रामचन्द्र का क्या कहके कर दूँ तुझको।
कल्पतरु वा कामधेनु या चिन्तामणि कह दूँ उनको।।
जिससे होता योग तभी सब मिल जाती सारी सत्ता।
बता बता रे भला यहाँ पर उससे किसकी है समता।।

(61)

कल्पवृक्ष के तले खड़े जो दुःखभाव उपजाते हैं।
उनके लिए सभी निश्चय ही दुःखरूप हो जाते हैं।।
मूढ़ भला वह भी है कैसा संतजनों से वाद करे।
क्यों न कहो उसके अन्तर पर शोक सदा आघात करे।

(62)

उसका निजध्यास तो सब ही टूट टूट गिर जाता है।
बलपूर्वक संताप शोक सब अन्तर में बस जाता है।।
सुखानन्द सब भेद-वृत्ति से डूब उसी का जाता है।
उदय खेद का होने से वह निश्चय से डिग जाता है।।

(63)

धरीं कामधेनू पुढें ताक मागे।
हरीबोध सांडूनि वेवाद लागे॥
करी सार चिंतामणी काचखंडें।
तया मागतां देत आहे उदंडें॥

(64)

अती मूढ त्या दृढ बुद्धी असेना।
अती काम त्या राम चित्तीं वसेना॥
अती लोभ त्या क्षोभ होईल जाणा।
अती वीषयीं सर्वदा दैन्यवाणा॥

(65)

नको दैन्यवाणें जिणें भक्तिऊणें।
अती मूर्ख त्या सर्वदा दुःख दूणें॥
धरीं रे मना आदरें प्रीति रामीं।
नको वासना हेमधामीं विरामीं॥

(66)

नव्हे सार संसार हा घोर आहे।
मना सज्जना सत्य शोधूनि पाहें॥
जनीं वीष खातां पुढें सूख कैंचें।
करीं रे मना ध्यान या राघवाचें॥

(63)

हरि बोध को छोड़ मूढ़ वो वाद-विवाद चलाता है।
घर में उसके कामधेनु है छाछ माँगने जाता है।।
चिन्तामणि हाथ में उसके लगा जुटाने शीशे को।
खूब मिलेंगे उसको वे तो लगा है जिनके पीछे वो।।

(64)

मूरखता की अति हो तो फिर कभी न बुद्धि दृढ़ होगी।
राम बसेंगे नहीं चित्त में यदि विषयासक्ति होगी।।
लोभ बढ़ा हो तो फिर मन में क्षोभ हुआ ही जानो तुम।
कामवासना की अति हो तब दीन बना ही मानो तुम।।

(65)

जिसके मन में भक्ति नहीं है उसकी वाणी होती दीन।
दुःख उसका दुगना हो जाता बुद्धि सदा ही रहती हीन।।
इस कारण से हे मन मेरे प्रीति राम से करना रे।
स्वर्णधाम की इच्छा मन में कभी नहीं तूँ धरना रे।।

(66)

हे सज्जन मन शोध सत्य को और देखले उसको ही।
घोर महा संसार मिलेगा इसमें तुझ को सार नहीं।।
विष को खावे यदि कोई तो सुख कैसे हो सकता है।
इसीलिए मन ध्यान राम का कर जितना हो सकता है।।

(67)

घनश्याम हा राम लावण्यरूपी।
महाधीर गंभीर पूर्णप्रतापी॥
करी संकटीं सेवकाचा कुडावा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(68)

बळें आगळा राम कोदंडधारी।
महाकाळ विक्राळ तोही थरारी॥
पुढें मानवा किंकरा कोण केवा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(69)

सुखानंदकारी निवारी भयातें।
जनीं भक्तिभावें भजावें तयातें॥
विवेकें त्यजावा अनाचार हेवा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(70)

सदा रामनामें वदा पूर्णकामें।
कदा बाधिजेनापदा नित्य नेमें॥
मदालस्य हा सर्व सोडोनि द्यावा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(67)

लावण्यरूप घनश्याम राम ये अति ही सुन्दर लगते हैं।
उनको ही गंभीर धीर और पूर्ण प्रतापी कहते हैं।।
संकट पड़े यदि सेवक पर करते हैं उसका रक्षण।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(68)

लिए हाथ में धनुष और वे बल में श्रेष्ठ कहाते हैं।
देख उन्हें विकराल काल भी काँप-काँप से जाते हैं।।
फिर सोचो तो किस गिनती में आयेगा मानव किंकर।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(69)

सुख-आनन्द के रूप सदा ये भक्तों का दुःख हरते हैं।
भयहारी वे उन भक्तों के भजन जो उनका करते हैं।।
कर विवेक और अनाचार का त्याग सदा तूँ करता चल।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(70)

पूर्णकाम है राम-नाम यह भजन इसी का कर ले रे।
विपदाओं से सदा बचाता नेम इसी का धर ले रे।।
मद-आलस्य बुरे हैं देखो इनको तो तूँ त्यागा कर।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(71)

जयाचेनि नामें महादोष जाती।
जयाचेनि नामें गती पाविजेती॥
जयाचेनि नामें घडे पुण्यठेवा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(72)

न वेंचे कदा ग्रंथिंचे अर्थ कांहीं।
मुखें नाम उच्चारितां कष्ट नाहीं॥
महाघोर संसारशत्रु जिणावा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(73)

देहेदंडणेचें महादु:ख आहे।
महादु:ख तें नाम घेतां न राहे॥
सदाशीव चिंतीतसे देवदेवा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(74)

बहूतांपरी संकटें साधनाचीं।
व्रतें दान उद्यापनें तीं धनाचीं॥
दिनाचा दयाळू मनीं आठवावा।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा॥

(71)

यही नाम है जिससे सारे महादोष जल जाते हैं।
यही नाम है जिससे सेवक मोक्षधाम पा जाते हैं।।
देता पुण्य अपार नाम यह इसको ही तूँ मन में धर।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(72)

नहीं गाँठ का पैसा इसमें खर्च एक भी होता है।
बोले मुख से नाम भला कह कष्ट कहाँ पर होता है।।
महाघोर संसार शत्रु भी हो जाता है इसके वश।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(73)

देहदण्ड के कारण देखो महादु:ख जो आता है।
नाम लिये से ऐसा दु:ख भी कभी नहीं रह पाता है।।
स्वयम् सदाशिव चिन्तन करते नाम इसी का प्रीतिकर।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(74)

नाना साधन जो भी हैं वे संकट से सब भरे हुए।
दानव्रतादि सारे उद्यम धन का आश्रय धरे हुए।।
दीनजनों पर कृपा करे जो याद उन्हीं की मन में भर।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर।।

(75)

समस्तामधें सार साचार आहे ।
कळेना तरी सर्व शोधूनि पाहें ।।
जिवा संशयो वाउगा तो त्यजावा ।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा ।।

(76)

नव्हे कर्म ना धर्म ना योग कांहीं ।
नव्हे भोग ना त्याग ना सांग पाहीं ।।
म्हणे दास विश्वास नामीं धरावा ।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा ।।

(77)

करी काम निष्काम या राघवाचें ।
करी रूप स्वरूप सर्वां जिवांचें ।।
करी छंद निर्द्वंद्व हे गूण गातां ।
हरीकीर्तनीं वृत्तिविश्वास होतां ।।

(78)

अहो ज्या नरा रामविश्वास नाहीं ।
तया पामरा बाधिजे सर्व कांहीं ।।
महाराज तो स्वामि कैवल्यदाता ।
वृथा वाहणें देहसंसारचिंता ।।

(75)

सभी साधनों बीच यही है श्रेष्ठ मान रे मन मेरे।
नहीं समझ में आवे तो भी ढूँढ़ इसी को तूँ ले रे ॥
संशय व्यर्थ महादुःखदायी इसको तूँ त्यागा कर।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर ॥

(76)

आवश्यकता नहीं कर्म की धर्मयोग की भी नाहीं।
नहीं भोग की, नहीं त्याग की, विचार देखले मनमाहीं ॥
कहे दास पर्याप्त यही विश्वास नाम पर अपना धर।
प्रभातकाल में हे मन मेरे राम-नाम का चिन्तन कर ॥

(77)

भक्ति एक राम की हो तो इतर कामना जाती है।
सब जीवों में रूप, रूप में सभी जीव दिखलाती है ॥
गुण गाने से सभी क्रियाएं द्वंद्व रहित बन जाती हैं।
वृत्ति पलटती हरि कीर्तन से औ' विश्वास जगाती है ॥

(78)

अरे, अरे रे, जिस नर को विश्वास राम पर है नाहीं।
उस पामर के लिए देख लो पग पग पर बाधा आईं ॥
महाराज वे स्वामी ऐसे कैवल्यदान ही देते हैं।
वृथा वृथा ही देहभार का बोझा हम ही ढोते हैं ॥

(79)

मना पावना भावना राघवाची।
धरीं अंतरीं सोडिं चिंता भवाची ॥
भवाची जिवा मानवा भूलि ठेली।
नसे वस्तुची धारणा व्यर्थ गेली ॥

(80)

धरा श्रीवरा त्या हराअंतरातें।
तरा दुस्तरा त्या परा सागरातें ॥
सरा वीसरा त्या भरा दुर्भरातें।
करा नीकरा त्या खरा मत्सरातें ॥

(81)

मना मत्सरें नाम सांडूं नको हो।
अती आदरें हा निजध्यास राहो ॥
समस्तामधें नाम हें सार आहे।
दुजी तूळणा तूळितांही न साहे ॥

(82)

बहू नाम या रामनामीं तुळेना।
अभाग्या नरा पामरा हें कळेना ॥
विषा औषधा घेतलें पार्वतीशें।
जिवा मानवा किंकरा कोण पूसे ॥

(79)

हे मन देख भावना पावन कैसी है रघुनायक की।
उससे ही छूटेगी तेरी चिंता इस भव भयदायक की॥
भ्रम में भूले, भव में झूले जीव यहाँ दुःख पाते हैं।
व्यर्थ धारणा इनकी सबकी नष्ट प्रायः हो जाते हैं॥

(80)

रे मन देख धारणा कर ले श्रीहरि की अन्तरतम में।
भवसागर में पड़ा हुआ जो पार जायेगा क्षण भर में॥
सबको भूल लगा है जो तूँ दुर्भर पेट को भरने में।
सोच देख ले सचमुच ही तूँ पड़ा दंभ औ' मत्सर में॥

(81)

रे मन मत्सर के कारण तूँ राम-नाम मत देना त्याग।
अति आदरपूर्वक ही करना इसी नाम का तूँ अभ्यास॥
सब नामों के बीच नाम यह सार रूप है जाना कर।
तुलना इसकी बने किसी से कभी न यह तूँ माना कर॥

(82)

नाम अनेकों पर कोई भी राम-नाम के नहीं बराबर।
समझ नहीं पाते वे पामर जो हैं बड़े अभागे नर॥
विष-औषध के रूप इसे ही शंकर भी करते हैं पान।
जीवभाव से ग्रसित मानवा उसको तो पूछेगा कौन॥

(83)

जेणें जाळिला काम तो राम ध्यातो ।
उमेसीं अती आदरें गूण गातो ।।
बहू ज्ञान वैराग्य सामर्थ्य जेथें ।
परी अंतरी नामविश्वास तेथें ।।

(84)

विठोनें शिरीं वाहिला देवराणा ।
तया अंतरी ध्यास रे त्यासि नेणा ।।
निवाला स्वयें तापसी चंद्रमौळी ।
जिवा सोडवी राम हा अंतकाळीं ।।

(85)

भजा राम विश्राम योगेश्वरांचा ।
जपू नेमिला नेम गौरीहराचा ।।
स्वयें नीववी तापसी चंद्रमौळी ।
तुम्हा सोडवी राम हा अंतकाळीं ।।

(86)

मुखीं राम विश्राम तेथेंचि आहे ।
सदानंद आनंद सेवूनि राहे ।।
तयावीण तो शीण संदेहकारी ।
निजधाम हें नाम शोकापहारी ।।

(83)

भस्म मदन को किया है वे भी ध्यान राम का धरते हैं।
अति आदर से उमा सहित वे गान उन्हीं का करते हैं॥
ज्ञान और वैराग्य सहित सामर्थ्य बड़ा ही है जिनका।
उन शंकर के मन में भी विश्वास नाम का है कितना॥

(84)

देवेश्वर शंकर को सिर पर धार विठोबा तक रहते।
वे शंकर भी अपने मन में ध्यान राम का ही करते॥
जिससे ज्ञानी तपसी शंकर प्राप्त शान्ति को करते हैं।
जीव छुड़ाने अन्तकाल में राम-नाम वे देते हैं॥

(85)

राम-नाम को भज कर ही विश्राम योगीजन पाते हैं।
पार्वती और शंकर भी तो इसी को जपते जाते हैं॥
स्वयं तापसी चन्द्रमौली भी शान्ति इसी में पाते हैं।
एक राम ही अन्तकाल में तुम्हें छुड़ाने आते हैं॥

(86)

जिसके मुख में राम-नाम विश्राम उसे ही मिलता है।
सदानन्द का रूप वही है सदा सुखी वह रहता है॥
उसके बिना व्यर्थ ही थकता ग्रसित सन्देहों से रहता।
राम-नाम ही निजधाम है दूर शोक को है करता॥

(87)

मुखीं राम त्या काम बांधूं शकेना ।
गुणें इष्ट धारिष्ट त्याचें चुकेना ॥
हरीभक्त तो शक्त कामास मारी ।
जगीं धन्य तो मारुती ब्रह्मचारी ॥

(88)

बहू चांगलें नाम या राघवाचें ।
अती साजिरें स्वल्प सोपें फुकाचें ॥
करी मूळ निर्मूळ घेतां भवाचें ।
जिवां मानवां हेंचि कैवल्य साचें ॥

(89)

जनीं भोजनीं नाम वाचे वदावें ।
अती आदरें गद्यघोषें म्हणावें ॥
हरीचिंतनें अन्न सेवीत जावें ।
तरी श्रीहरी पाविजे तो स्वभावें ॥

(90)

न ये रामवाणी तया थोर हाणी ।
जनीं व्यर्थ प्राणी तया नाम काणी ॥
हरीनाम हें वेदशास्त्रीं पुराणीं ।
बहू आगळें बोलिली व्यासवाणी ॥

(87)

वास राम का जिसके मुख में बाँध उसे क्या सकता काम।
धैर्य तथा गुण और इष्ट भी उससे कभी न होते वाम।।
महाभक्त जो हुआ हरि का नाश किया था जिसने काम।
धन्य जगत में भक्त-शिरोमणि व ब्रह्मचारी श्रीहनुमान।।

(88)

सुन्दर सुन्दर रे अति सुन्दर नाम बड़ा रघुनायक का।
लगता नहीं खर्च कुछ इसमें छोटा सा दो अक्षर का।।
नाश मूल से भवभय करने इसी नाम को लेते हैं।
हे मानव तूँ सत्य मान कैवल्य इसी को कहते हैं।।

(89)

भोजन करते करते भी तूँ राम-नाम को रटता जा।
अति ही आदरपूर्वक लय से इसी नाम को भजता जा।।
हरि का चिन्तन करते करते सेवन अन्न करेगा तूँ।
स्वाभाविक ही सहज रूप से हरि को प्राप्त करेगा तूँ।।

(90)

बहुत बड़ी हानि उसकी जो राम-नाम नहीं लेता है।
जीवन उसका व्यर्थ हुआ औ' व्यर्थ उसे वो ढोता है।।
मीठा मीठा नाम हरि का कहते हैं यह सभी पुराण।
वेद शास्त्र और स्वयं व्यास भी कह कर गये यही आख्यान।।

(91)

नको वीट मानूं रघूनायकाचा।
अती आदरें बोलिजे राम वाचा ॥
न वेंचे मुखी सांपडे रे फुकाचा।
करीं घोष त्या जानकीवल्लभाचा ॥

(92)

अति आदरें सर्व ही नामघोषें।
गिरीकंदरीं जाइजे दूरि दोषें ॥
हरी तिष्ठतू तोषला नामतोषें।
विशेषें हरा मानसीं रामपीसें ॥

(93)

जगीं पाहतां देव हा अन्नदाता।
तया लागली तत्त्वतां सार चिंता ॥
तयाचें मुखीं नाम घेता फुकाचें।
मना सांग पां रे तुझें काय वेंचे ॥

(94)

तिन्ही लोक जाळूं शके कोप येतां।
निवाला हरू तो मुखें नाम घेतां ॥
जपे आदरें पार्वती विश्वमाता।
म्हणोनी म्हणा तेंचि हें नाम आतां ॥

(91)

श्रीराघव से नहीं कभी भी मन तेरा उकता पाये।
वाणी तेरी राम-नाम को आदर से गाती जाये॥
लगता नहीं खर्च कुछ तो भी मुफ्त नाम है आता यह।
इसीलिए मन राम-नाम का घोष सदा तूँ करता रह॥

(92)

आदरपूर्वक राम-नाम का घोष सदा ही करने से।
हो जाते हैं दोष दूर सब गिरि-कन्दर में छिपते वे॥
होते हैं सन्तुष्ट हरि भी इसी नाम को जपने से।
सोच जरा शंकर भी होते तृप्त इसी को रटने से॥

(93)

देख समझ ले यही देव तो जगत का पालनहारा है।
चिन्ता उसको लगी सभी की सबका वह रखवाला है॥
उसका नाम मुफ्त का लेते मुख तेरा क्या घिसता है।
कह ले कह मन उसमें तेरी गाँठ से क्या कुछ लगता है॥

(94)

कुपित यदि हो जायें कभी तो भस्म त्रिलोक को कर सकते।
वे शंकर भी शान्त हुए हैं इसी नाम को जप करके॥
जगन्मात् जो स्वयं पार्वती इसी नाम को जपती है।
इसीलिए मन जप तूँ उसको जितनी तेरी शक्ति है॥

(95)

अजामेळ पापी वदे पुत्रकामें।
तया मुक्ति नारायणाचेनि नामें ॥
शुकाकारणें कुंटणी राम वाणी।
मुखें बोलतां ख्याति जाली पुराणीं ॥

(96)

महाभक्त प्रल्हाद हा दैत्यकूळीं।
जपे रामनामावळी नित्यकाळीं ॥
पिता पापरूपी तया देखवेना।
जनीं दैत्य तो नाम मूखें म्हणेना ॥

(97)

मुखीं नाम नाहीं तया मुक्ति कैंची।
अहंतागुणें यातना ते फुकाची ॥
पुढें अंत येईल तो दैन्यवाणा।
म्हणोनी म्हणा रे म्हणा देवराणा ॥

(98)

हरीनाम नेमस्त पाषाण तारी।
बहू तारिले मानवीदेहधारी ॥
तया रामनामीं सदा जो विकल्पी।
वदेना कदा जीव तो पापरूपी ॥

(95)

पापी बड़ा अजामिल उसने लिया पुत्र के मिस से नाम ।
नारायण था नाम इसी से दे दी उसको मुक्ति ललाम ।।
शुक के मिस वैश्या जो लेती नाम राम का बारम्बार ।
सर्व विदित वह हुई उसी से महिमा नाम की अपरम्पार ।।

(96)

दानव कुल में जनमा तो भी भक्त हुआ जो अतिभारी ।
वह प्रह्लाद भी करता है जप सदा सर्वदा इसका ही ।।
पाप रूप पिता कि उसको यह सब नहीं सुहाता था ।
दानव था दानव के मुख में नाम कभी नहीं आता था ।।

(97)

मुख में जिसके नाम नहीं फिर उसको मुक्ति मिले कैसी ।
अहंकार से भरा उसे तो व्यर्थ यातना होगी ही ।।
उसके मुख में आगे चलकर दीन वाणी ही आती है ।
नाम जपो मन नाम जपो रे नाम देव का साथी है ।।

(98)

ऐसा नाम हरि का जिसने पत्थर तक को तारा है ।
और अनेकों मानव देही सब को पार उतारा है ।।
ऐसे राम-नाम के होते जो विकल्प में फँसता है ।
ऐसा जीव सदा ही देखो पाप-पँक में धँसता है ।।

(99)

जगीं धन्य वाराणसी पुण्यराशी।
तयेमाजिं जातां गती पूर्वजांसी ।।
मुखें रामनामावळी नित्यकाळीं।
जिवा हीत सांगे सदा चंद्रमौळी ।।

(100)

यथासांग रे कर्म तेंही घडेना।
घडे धर्म तें पुण्य गांठीं पडेना ।।
दया पाहतां सर्वभूतीं असेना।
फुकाचें मुखी नाम तेंही वसेना ।।

(101)

जया नावडे नाम त्या येम जाची।
विकल्पें उठे तर्क त्या नर्क ची ची ।।
म्हणोनि अति आदरें नाम घ्यावें।
मुखें बोलतां दोष जाती स्वभावें ।।

(102)

अती लीनता सर्वभावें स्वभावें।
जना सज्जनालागिं संतोषवावें ।।
देहे कारणीं सर्व लावीत जावें।
सगूणीं अती आदरेंसीं भजावें ।।

(99)

धन्य जगत में वह काशी जो अमिट पुण्य की राशी है ।
पहुँच जहाँ पर पितरों तक को उत्तम गति मिल जाती है ॥
मुख से राम-नाम को देखो शिवजी स्वयं सदा जपते ।
नित्य नियम से राम-नाम ले हित जीवों का वे करते ॥

(100)

कर्म अनेकों पर विधिवत् तो नहीं कभी वे हो पाते ।
किसी तरह हो जावे तो भी पुण्य नहीं हैं जुड़ जाते ॥
सभी भूत जीवों पर मन में भाव दया का आता क्या ।
मिला मुफ्त में नाम उन्हें पर उनको है वह भाता क्या ॥

(101)

प्रीति नहीं जब राम-नाम की यम का द्वार मिलेगा रे ।
घृणा नर्क को भी होगी यदि तर्क-वितर्क करेगा रे ॥
इसीलिए अति आदर से तुम राम-नाम का ध्यान धरो ।
छूटे दोष सहज भाव से मुख से यदि उच्चार करो ॥

(102)

सहज रूप से सर्वभाव से और लीनता पूरी से ।
सन्तों को सन्तोष मिले तुम ऐसे करो सबूरी से ॥
देह लगी है इसीलिए इन सबको करना होता है ।
अति आदर से सगुण भजन को मन में धरना होता है ॥

(103)

हरीकीर्तनें प्रीति रामीं धरावी।
देहेबुद्धि नीरूपणीं वीसरावी॥
परद्रव्य आणीक कांता परावी।
यदर्थी मना सांडि जीवीं करावी॥

(104)

क्रियेवीण नानापरी बोलिजेतें।
परी चित्त दुश्चित्त तें लाजवीतें॥
मना कल्पना धीट सैराट धांवे।
तया मानवा देव कैसेनि पावे॥

(105)

विवेकें क्रिया आपुली पालटावी।
अती आदरें शुद्ध क्रीया धरावी॥
जनीं बोलण्यासारिखें चाल बापा।
मना कल्पना सोडिं संसारतापा॥

(106)

बरी स्नानसंध्या करी येकनिष्ठा।
विवेकें मना आवरी स्थानभ्रष्टा॥
दया सर्वभूतीं जया मानवाला।
सदा प्रेमळू भक्तिभावें निवाला॥

(103)

हरि का कीर्तन और राम की प्रीति मन में धरता जा।
देह-निरूपण और विषयों को दूर सदा ही करता जा॥
परधन और परनारी से तूँ दूर सदा ही रहना रे।
धर ले ऐसा नियम और आचार शुद्ध तूँ रखना रे॥

(104)

लम्बी लम्बी बातें हाँके क्रिया नहीं कुछ करते हैं।
बसे चित्त में हीन भाव वे लज्जित उनको करते हैं॥
चले कल्पना तूफानी जो नहीं जानती है रुकना।
उनको देव मिलेगा कैसे रहे उन्हें तो वह सपना॥

(105)

विवेक बल से रे मन मेरे अपनी क्रिया बदलता जा।
शुद्ध क्रिया ही आदरपूर्वक सदा नियम से करता जा॥
छोड़ कल्पना विषयों की संसार ताप ही उसका फल।
एक बात तूँ सुन मेरे भाई जैसा बोले वैसा चल॥

(106)

चंचल मन में विवेक-बल से एकनिष्ठता लायेगा।
स्नान और संध्यावंदन तो उसमें ही हो जायेगा॥
भूतमात्र के लिए दया का भाव हृदय में आयेगा।
तभी प्रेम से भरी भक्ति से शान्त चित्त हो जायेगा॥

(107)

मना कोपआरोपणा ते नसावी।
मना बुद्धि हे साधुसंगीं वसावीं ।।
मना नष्ट चांडाळ तो संग त्यागीं।
मना होई रे मोक्षभागीं विभागी ।।

(108)

सदा सर्वदा सज्जनाचेनि योगें।
क्रिया पालटे भक्तिभावार्थ लागे ।।
क्रियेवीण वाचाळता ते निवारीं।
तुटे वाद संवाद तो हीतकारी ।।

(109)

जनीं वाद वेवाद सोडूनि द्यावा।
जनीं सूखसंवाद सूखें करावा ।।
जगीं तोचि तो शोकसंतापहारी।
तुटे वाद संवाद तो हीतकारी ।।

(110)

तुटे वाद संवाद त्यातें म्हणावें।
विवेकें अहंभाव यातें जिणावें ।।
अहंतागुणें वाद नाना विकारी।
तुटे वाद संवाद तो हीतकारी ।।

(107)

क्रोध भाव जो मन में तेरे उसको तो तूँ कर दे नष्ट।
तेरी बुद्धि को मन मेरे साधु-संग ही होवे इष्ट ॥
नष्ट-भ्रष्ट जो लोग जगत में उनका तो तूँ कर दे त्याग।
ऐसा करके ही मन मेरे मोक्ष-मार्ग तूँ कर ले प्राप्त ॥

(108)

सदा संग सन्तों का कर ले बदल क्रियाओं के तूँ रूप।
भक्तिभाव को धारण करके पा ले अपना सत्य स्वरूप ॥
बिना क्रिया की बातों से तूँ रहे दूर यह रखना ध्यान।
जिससे टूटे वाद सभी ही वह हितकारी है संवाद ॥

(109)

हे मन मेरे लोगों से तूँ मत कर कोई वाद-विवाद।
सुख से रह कर सुखपूर्वक तूँ करते रहना सुख-संवाद ॥
यही नाश करता है जग के सारे शोक और संताप।
जिससे टूटे वाद सभी ही वह हितकारी है संवाद ॥

(110)

जिससे टूटे वाद सभी ही इसको कहते हैं संवाद।
इसीलिए कर विवेक जीत ले महाशत्रु जो अहंभाव ॥
एक अहंता उपजाती है कई विकार औ' वाद-विवाद।
जिससे टूटे वाद सभी ही वह हितकारी है संवाद ॥

(111)

हिताकारणें बोलणें सत्य आहे।
हिताकारणें सर्व शोधूनि पाहें॥
हिताकारणें बंड पाखांड वारी।
तुटे वाद संवाद तो हीतकारी॥

(112)

जनीं सांगतां ऐकतां जन्म गेला।
परी वादवेवाद तैसाचि ठेला॥
उठे संशयो वाद हा दंभधारी।
तुटे वाद संवाद तो हीतकारी॥

(113)

जनीं हीत पंडीत सांडीत गेले।
अहंतागुणें ब्रह्मराक्षस जाले॥
तयांहूनि व्युत्पन्न तो कोण आहे।
मना सर्व जाणीव सांडूनि राहें॥

(114)

फुकाचें मुखीं बोलतां काय वेंचे।
दिसेंदीस अभ्यंतरीं गर्व सांचे॥
क्रियेवीण वाचाळता व्यर्थ आहे।
विचारें तुझा तूंचि शोधूनि पाहें॥

(111)

अपने हित के लिए सदा ही सत्य वचन तूँ बोला कर।
अपने हित के लिए सदा ही शोध सत्य की कर ले नर॥
छोड़ दुष्ट पाखण्ड उसे तो बार-बार ही है धिक्कार।
जिससे टूटे वाद सभी ही वह हितकारी है संवाद॥

(112)

बकझक करते कहते सुनते गया भले ही जीवन बीत।
वाद-विवाद रहा वैसा ही नहीं किसी की होती जीत॥
उल्टे उठते संशय उससे और दम्भ की आती बाढ़।
जिससे टूटे वाद सभी ही वह हितकारी है संवाद॥

(113)

जन-हित करने वाले औ' जो पंडित हो गये बड़े महान।
बने अन्त में ब्रह्मराक्षस ही यही अहंता का परिणाम॥
उनसे भी हो बुद्धि-विचक्षण ऐसा तो इस जग में कौन।
इसीलिए मन ज्ञानी हूँ मैं ऐसा दम्भ तूँ देना छोड़॥

(114)

मुख से झूठी बकझक करते बोल किसी का लगता क्या।
दिन-दिन मन में गर्वभाव ही जाता है नहीं बढ़ता क्या॥
बिना क्रिया की लम्बी बातें व्यर्थ सदा ही होती हैं।
शोध विचार और देख नहीं क्या बातें ये सब थोथी हैं॥

(115)

तुटे वाद संवाद तेथें करावा।
विवेकें अहंभाव हा पालटावा ॥
जनीं बोलण्यासारिखें आचरावें।
क्रियापालटें भक्तिपंथेंचि जावें ॥

(116)

बहू श्रापितां कष्टला अंबऋषी।
तयाचे स्वयें श्रीहरी जन्म सोशी ॥
दिला क्षीरसिंधू तया ऊपमानी।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ॥

(117)

धुरुं लेंकरूं बापुडें दैन्यवाणें।
कृपा भाकितां दीधली भेटि जेणें ॥
चिरंजीव तारांगणीं प्रेमखाणी।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ॥

(118)

गजेंद्रू महासंकटीं वास पाहे।
तयाकारणें श्रीहरी धांवताहे ॥
उडी घातली जाहला जीवदानी।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ॥

(115)

कर ऐसा संवाद कि जिससे जाये टूट सभी ही वाद।
रख विवेक और बदल डाल तूँ मन का सारा अहंभाव ।।
जैसा बोले देख मना तूँ वैसा ही करना रे काम।
पलट क्रियाओं को तूँ अपनी भक्तिपंथ पर रख दे पाँव ।।

(116)

लगा शाप जब अंबऋषि को कष्ट बहुत ही पाया था।
जन्म धार कर स्वयं हरि ने आकर उन्हें छुड़ाया था ।।
उपमन्यु के लिए तो देखो क्षीरसिन्धु भी ला धरते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते ।।

(117)

ध्रुव बालक था उसे पिता ने दीन बना कर छोड़ दिया।
माँगी कृपा प्रभू से तब ही अपना करके मोक्ष दिया ।।
किया चिरायु तारागण में ऐसा प्रेम प्रभू करते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते ।।

(118)

जब गजेन्द्र पर एक बार यों भारी संकट आया था।
तब दौड़े थे श्रीहरि ही और आकर उसे छुड़ाया था ।।
इसी तरह वे सदा भक्त को जीवनदान दिया करते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते ।।

(119)

अजामेळ पापी तया अंत आला ।
कृपाळूपणें तो जनीं मुक्त केला ।।
अनाथासि आधार हा चक्रपाणी ।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ।।

(120)

विधीकारणें जाहला मत्स्य वेगीं ।
धरी कूर्मरूपें धरा पृष्ठभागीं ।।
जना रक्षणाकारणें नीच योनी ।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ।।

(121)

महाभक्त प्रल्हाद हा कष्टवीला ।
म्हणोनी तयाकारणें सिंह जाला ।।
न ये ज्वाळ वीषाळ संनीध कोणी ।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ।।

(122)

कृपा भाकितां जाहला वज्रपाणी ।
तयाकारणें वामनू चक्रपाणी ।।
द्विजांकारणें भार्गवू चापपाणी ।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ।।

(119)

अजामिल जैसे पापी का भी अन्तकाल जब आया था।
करके कृपा उसे भी हरि ने मुक्त किया अपनाया था।।
चक्रपाणि भगवान स्वयं आधार अनाथों का बनते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते।।

(120)

श्रीहरि ने ब्रह्मा के कारण मत्स्य रूप अवतार लिया।
धरी पीठ पर पृथ्वी थी और कछुए का था रूप किया।।
भक्तों की रक्षा के कारण नीच योनि भी ये धरते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते।।

(121)

प्रह्लाद जो महाभक्त थे उनको भी जब कष्ट हुआ।
रक्षा उनकी करने को विकराल सिंह का रूप लिया।।
विशाल ज्वाल की ज्वाला थे तब कौन सन्निध जा सकते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते।।

(122)

भीख कृपा की श्रीहरि से जब इन्द्रदेव ने माँगी थी।
उनके लिए बने प्रभू वामन उनकी दशा सम्हाली थी।।
द्विजवृन्दों हित बने भार्गव ऐसे वे रक्षण करते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते।।

(123)

अहल्येसतीलागिं आरण्यपंथें ।
कुडावा पुढें देव बंदी तयातें ।।
बळें सोडितां घाव घाली निशाणीं ।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।।

(124)

तये द्रौपदीकारणें लागवेगें ।
त्वरें धांवतो सर्व सांडूनि मागें ।।
कळीलागिं जाला असे बौद्ध मौनी ।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ।।

(125)

अनाथां दिनांकारणें जन्मताहे ।
कलंकी पुढें देव होणार आहे ।।
जया वर्णितां शीणली वेदवाणी ।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी ।।

(126)

जनाकारणें देव लीलावतारी ।
बहूतांपरी आदरें वेषधारी ।।
तया नेणती ते जन पापरूपी ।
दुरात्मे महानष्ट चांडाळ पापी ।।

(123)

वन-पथ पर से जाते जाते किया अहिल्या का उद्धार।
बन्दी थे जो देव छुड़ाया निज बल से उनको तत्काल ।।
ऐसी ही कीर्ति है उनकी घोष उसी का सब करते।
दासों का अभिमान राम को दास-उपेक्षा नहीं करते।

(124)

सती द्रौपदी कारण उनको चिन्ता बहुत लगी थी जब।
पहुँचे सब कुछ छोड़ वहाँ पर उसकी विपदा हर ली सब ।।
कलिकाल में हुए बुद्ध भी जो थे मौन बने रहते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते ।।

(125)

दीन और अनाथों के हित जन्म लिया था बारम्बार।
और अभी भी रूप कलंकी धर कर लेंगे वे अवतार ।।
स्वयं वेद भी उनका वर्णन करते करते थक जाते।
भक्तों का अभिमान देव को भक्त-उपेक्षा नहीं करते ।।

(126)

भक्तों ही के लिए देव भी लीला नाना करते हैं।
उनके ही तो लिए सदा वे वेश अनेकों धरते हैं ।।
उनसे जो अनभिज्ञ उसे तो पाप रूप ही जानो तुम।
महानष्ट चाण्डाल दुरात्मा उसको पापी मानो तुम ।।

(127)

जगीं धन्य तो रामसूखें निवाला ।
कथा ऐकतां सर्व तल्लीन झाला ।।
देहेभावना रामबोधें उडाली ।
मनोवासना रामरूपीं बुडाली ।।

(128)

मना वासना वासुदेवीं वसों दे ।
मना कामना कामसंगीं नसों दे ।।
मना कल्पना वाऊगी ते न कीजे ।
मना सज्जना सज्जनीं वस्ति कीजे ।।

(129)

गतीकारणें संगती सज्जनाची ।
मती पालटे सूमती दुर्जनाची ।।
रतीनायिकेचा पती नष्ट आहे ।
म्हणोनी मनातीत होऊनि राहे ।।

(130)

मना अल्प संकल्प तो ही नसावा ।
सदा सत्यसंकल्प चित्तीं वसावा ।।
जनीं जल्प वीकल्प तो ही त्यजावा ।
रमाकांत एकांतकाळीं भजावा ।।

(127)

धन्य वही इस जग में है जो हुआ शान्त औ' रामसुखलीन।
गाकर सुनकर राम-कथा को हो जाता है जो तल्लीन॥
राम-बोध से हुई तिरोहित देह-भावना भी उसकी।
राम-रूप में डूब गई है मनोवासना सब जिसकी॥

(128)

हे मन तेरी सभी वासना वासुदेव में बसने दे।
और कामनाओं को हे मन काम संग नहीं लगने दे॥
व्यर्थ कल्पना होती सब ही दूर उसी से रहना तूँ।
हे सज्जन मन सज्जन संग में वास सदा ही करना तूँ॥

(129)

संतजनों की संगति करना उससे सद्गति होती है।
दुर्जन लोगों की भी बुद्धि पलट सुबुद्धि होती है॥
कामदेव जो अति धृष्ट है उसको तो करना है नष्ट।
इसीलिए बन मनातीत तूँ, मिट जायेगा सारा कष्ट॥

(130)

हो संकल्प अल्प भी मन में उसका भी तूँ कर दे नाश।
और सत्य संकल्प सदा ही करे चित्त में तेरे वास॥
त्याग सर्वथा बड़बड़ सारी और विकल्पों की भरमार।
एकान्तकाल में रमाकान्त का भजन तूँ कर ले बारम्बार॥

(131)

भजाया जनीं पाहतां राम एकू।
करीं बाण एकू मुखीं शब्द एकू ।।
क्रिया पाहतां उद्धरे सर्व लोकू।
धरा जानकीनायकाचा विवेकू ।।

(132)

विचारूनि बोले विवंचूनि चाले।
तयाचेनि संतप्त तेही निवाले ।।
बरें शोधिल्यावीण बोलों नको हो ।
जनीं चालणें शुद्ध नेमस्त राहो ।।

(133)

हरीभक्त वीरक्त विज्ञानराशी।
जेणें मानसीं स्थापिलें निश्चयासी ।।
तया दर्शनें स्पर्शनें पुण्य जोडे।
तया भाषणें नष्ट संदेह मोडे ।।

(134)

नसे गर्व आंगीं सदा वीतरागी।
क्षमा शांति भोगी दया दक्ष योगी ।।
नसे लोभ ना क्षोभ ना दैन्यवाणा।
इंहीं लक्षणीं जाणिजे योगिराणा ।।

(131)

देख मना तूँ राम-नाम का करना भजन सदा ही रे।
हाथ में जिनके बाण एक और मुख में शब्द एक ही रे ।।
उनकी क्रिया देखकर होता तीनों लोकों का उद्धार।
इसीलिए कर विवेक राम का और नाम का कर उच्चार ।।

(132)

बोले जो नर सोच समझ और करे आचरण वैसा ही।
उसके संग से जाता दुःख है हो चाहे वह कैसा ही ।।
जन-जन में जब बोलो कुछ भी प्रथम शोध तुम कर लो रे।
नियमबद्ध और सदाचरण से जीवन अपना भर लो रे ।।

(133)

हुआ स्थापित जिसका मन है आत्मा के निश्चय पर ही।
हरि का भक्त विरागी मन से है विज्ञान की राशि वही ।।
दरस-परस उसका तो होता अमित पुण्य का दाता है।
मिटे सन्देह सुने जो भाषण और सुमारग पाता है ।।

(134)

हुआ गर्व का नाश और जो वीतरागी है बना हुआ।
जिसके मन में क्षमा शान्ति और दया भाव है भरा हुआ।
नहीं लाभ है नहीं क्षोभ है दीन वाणी का काम नहीं ।।
ऐसे लक्षण रखने वाला, जानो योगीराज वही ।।

(135)

धरीं रे मना संगती सज्जनाची।
जेणें वृत्ति हे पालटे दुर्जनाची ।।
बळें भाव सद्‌बुद्धि सन्मार्ग लागे।
महाक्रूर तो काळ विक्राळ भंगे ।।

(136)

भयें व्यापिलें सर्व ब्रह्मांड आहे।
भयातीत तें संत आनंत पाहें ।।
जया पाहतां द्वैत कांहीं दिसेना।
भय मानसीं सर्वथाही असेना ।।

(137)

जिवां श्रेष्ठ ते स्पष्ट सांगोनि गेले।
परी जीव अज्ञान तैसेचि ठेले ।।
देहेबुद्धिचें कर्म खोटें टळेना।
जुनें ठेवणें मीपणें आकळेना ।।

(138)

भ्रमें नाडळे वित्त तें गुप्त जालें।
जिवा जन्मदारिद्र ठाकूनि आलें ।।
देहेबुद्धिचा निश्चयो ज्या टळेना।
जुनें ठेवणें मीपणें आकळेना ।।

(135)

हे मन सज्जनजन के ही तो संग सदा तूँ रहना रे।
दुर्जन की भी वृत्ति बदलती संग उन्हीं के रहने से ॥
सद्बुद्धि सन्मार्ग मिलेगा शुचि भावों को बल पाकर।
महाक्रूर विकराल काल भी होगा भंग यहाँ आकर ॥

(136)

समस्त विश्व में देखें यदि तो व्याप्त एक ही भीति है।
भय से ऊपर उठ कर रहना यह सन्तों की रीति है ॥
जिसके दर्शन हो जाने से द्वैत कहीं भी नहीं रहता।
देखो मन में उसके भय का लेशमात्र भी नहीं रहता ॥

(137)

जीवों का हित करने को गये संत सब कह करके।
पर अज्ञानी जीव अभी भी रहते वैसे के वैसे ॥
देहबुद्धि के कारण खोटे कर्म कभी ना टल पाते।
अहंकार के वश में होते मर्म समझ वे नहीं पाते ॥

(138)

भारी भ्रम है टलता नाहीं गुप्त बना रहता है धन।
जन्म-दरिद्रता लगी जीव को पीड़ित रहता उसका मन ॥
जब तक निश्चय देह-बुद्धि का कभी नहीं वे बच पाते।
अहंकार के वश में होते मर्म समझ वे नहीं पाते ॥

(139)

पुढें पाहतां सर्वही कोंदलेंसे ।
अभाग्यास हें दृश्य पाषाण भासे ॥
अभावें कदा पुण्य गांठीं पडेना ।
जुनें ठेवणें मीपणें आकळेना ॥

(140)

जयाचें तया चूकलें प्राप्त नाहीं ।
गुणें गोविलें जाहलें दुःख देहीं ॥
गुणावेगळी वृत्ति ते ही वळेना ।
जुनें ठेवणें मीपणें आकळेना ॥

(141)

म्हणे दास सायास त्याचे करावे ।
जनीं जाणता पाय त्याचे धरावे ॥
गुरु-अंजनेंवीण तें आकळेना ।
जुनें ठेवणें मीपणें तें कळेना ॥

(142)

कळेना कळेना कळेना ढळेना ।
ढळे नाढळे संशयोही ढळेना ॥
गळेना गळेना अहंता गळेना ।
बळें आकळेना मिळेना मिळेना ॥

(139)

भरा देव है सभी जगह, जो देख सके कोई आगे।
किन्तु दृश्य पाषाण दिखता ऐसे ये हैं लोग अभागे॥
श्रद्धा और विश्वास नहीं फिर जोड़ पुण्य कैसे सकते।
अहंकार के वश में होते मर्म समझ वे नहीं पाते॥

(140)

ऐसी चूक हुई है जिनसे प्राप्त उन्हें वे नहीं होते।
तीनों गुण में लिप्त रहें और देह-दुःख ही हैं ढोते॥
गुणातीत-वृत्ति तक तो वे पहुँच कभी भी नहीं पाते।
अहंकार के वश में होते मर्म समझ वे नहीं पाते॥

(141)

रामदास का कहना ऐसा प्रयत्न उसी के लिए करो।
ज्ञानीजन के चरणों को तुम अपने चित्त में सदा धरो॥
गुरु-अंजन बिन कभी देव को, स्पष्ट देख वे नहीं पाते।
अहंकार के वश में होते मर्म समझ वे नहीं पाते॥

(142)

नहीं आयेगा नहीं आयेगा नहीं समझ में आयेगा।
नहीं जायेगा नहीं जायेगा संशय कभी न जायेगा॥
कभी नहीं अहंता मन की ऐसे ही गल जायेगी।
हठ करने से कभी न ऐसे बात समझ में आयेगी॥

(143)

अविद्यागुणें मानवा ऊमजेना ।
भ्रमें चूकलें हीत तें आकळेना ।।
परीक्षेविणें बांधिले दृढ नाणें ।
परी सत्य मिथ्या असें कोण जाणे ।।

(144)

जगीं पाहतां साच तें काय आहे ।
अती आदरें सत्य शोधूनि पाहें ।।
पुढें पाहतां पाहतां देव जोडे ।
भ्रम भ्रांति अज्ञान हें सर्व मोडे ।।

(145)

सदा वीषयो चिंतितां जीव जाला ।
अहंभाव अज्ञान जन्मास आला ।।
विवेकें सदा सस्वरूपीं भरावें ।
जिवा ऊगमीं जन्म नाहीं स्वभावें ।।

(146)

दिसे लोचनीं तें नसे कल्पकोडी ।
अकस्मात आकारलें काळ मोडी ।।
पूढें सर्व जाईल कांहीं न राहे ।
मना संत आनंत शोधूनि पाहें ।।

(143)

प्रभाव अविद्या का है ऐसा मानव समझ नहीं पाता।
भ्रम से होती चूक बराबर अपना हित नहीं दिख पाता ।।
बिना परीक्षा किये हुए ही धन से वह बंध जाता है।
क्या है सत्य क्या है मिथ्या किसे समझ में आता है ।।

(144)

देख जगत को और बता दे क्या है इसमें सत्य कहीं।
आदरपूर्वक सत्य शोध ले और देखले उसे यहीं ।।
ऐसे दर्शन करते करते देव रूप को जोड़ो रे।
भ्रम भ्रांति अज्ञान मिटाकर झूठे जग को छोड़ो रे ।।

(145)

विषयों का चिन्तन ही जिसका सदा सर्वदा चलता है।
अहंभाव अज्ञान रूप वह जीव जन्म को धरता है ।।
करे विवेक वही जीव तो सस्वरूप से भर जाये।
उसको मिले स्थिति ऐसी जन्म भला वह क्यों पाये ।।

(146)

जो कुछ दिखता नयनों से वह प्राप्त नाश को होता है।
चाहे आयु कोटि वर्ष की काल दबोच ही लेता है ।।
आगे चल कर जाये सब कुछ रह कुछ भी नहीं पायेगा।
इसीलिए मन संत-संग से, शोध अनन्त को पायेगा ।।

(147)

फुटेना तुटेना चळेना ढळेना ।
सदा संचलें मीपणें तें कळेना ।।
तया एकरूपासि दूजें न साहे ।
मना संत आनंत शोधूनि पाहें ।।

(148)

निराकार आधार ब्रह्मादिकांचा ।
जया सांगतां शीणली वेदवाचा ।।
विवेकें तदाकार होऊनि राहें ।
मना संत आनंत शोधूनि पाहें ।।

(149)

जगीं पाहतां चर्मचक्षीं न लक्षे ।
जगीं पाहतां ज्ञानचक्षीं न रक्षे ।।
जगीं पाहतां पाहणें जात आहे ।
मना संत आनंत शोधूनि पाहें ।।

(150)

नसे पीत ना श्वेत ना श्याम कांहीं ।
नसे व्यक्त अव्यक्त ना नीळ नाहीं ।।
म्हणे दास विश्वासतां मुक्ति लाहे ।
मना संत आनंत शोधूनि पाहें ।।

(147)

टूट-फूट होती नहीं उसमें उदय-अस्त का नाम नहीं।
सदा करे संचार परन्तु अहम्-भाव से मिला कहीं॥
एक रूप वह रहे सदा ही उसे द्वैत कब भायेगा।
इसीलिए मन संत-संग से, शोध अनन्त को पायेगा॥

(148)

निराकार है पर ब्रह्मादिक देवों का आधार वही।
वाणी चारों वेदों की भी वर्णन करके थकी सही॥
धारण करे विवेक यदि तो तदाकार बन जायेगा।
इसीलिए मन संत-संग से, शोध अनन्त को पायेगा॥

(149)

चर्म चक्षु तो लगे जगत पर वह कैसे लक्षित होगा।
ज्ञान चक्षु यदि खुल जायें तो नहीं रहेगा फिर धोखा॥
देख जगत के पीछे लग कर लक्ष्य-मात्र खो जायेगा।
इसीलिए मन संत-संग से, शोध अनन्त को पायेगा॥

(150)

श्वेत नहीं है पीत नहीं है और रंग है श्याम नहीं।
व्यक्त नहीं अव्यक्त नहीं और नील वर्ण का काम नहीं॥
कहे दास विश्वास करे जो मुक्त वही हो जायेगा।
इसीलिए मन संत-संग से, शोध अनन्त को पायेगा॥

(151)

खरें शोधितां शोधितां शोधिताहे ।
मना बोधितां बोधितां बोधताहे ॥
परी सर्वही सज्जनाचेनि योगें ।
बरा निश्चयो पाहिजे सानुरागें ॥

(152)

बहूतां परी कूसरी तत्त्वझाडा ।
परी पाहिजे अंतरीं तो निवाडा ॥
मना सार साचार तें वेगळें रे ।
समस्तांमधें येक तें आगळें रे ॥

(153)

नव्हे पिंडज्ञानें नव्हे तत्त्वज्ञानें ।
समाधान कांही नव्हे तानमानें ॥
नव्हे योगयागें नव्हे भोगत्यागें ।
समाधान तें सज्जनाचेनि योगें ॥

(154)

महावाक्य तत्त्वादिकें पंचीकर्णें ।
खुणे पाविजे संतसंगे विवर्णें ॥
द्वितीयेसि संकेत जो दाविजेतो ।
तया सांडुनी चंद्रमा भाविजेतो ॥

(151)

शोधन करते करते निश्चय शोध ब्रह्म को पाते हैं।
बोध मनस का करते करते वहाँ बोध उपजाते हैं।।
सज्जनजन की संगति से पर संभव यह सब होता है।
इसीलिए मन निश्चय करके बीज प्रेम का बोता है।।

(152)

तत्वज्ञान की बातें लम्बी बहुत चतुरता से करते।
पर अंतर को ब्रह्मज्ञान से कभी नहीं वे भर सकते।।
साचार सार का भिन्न वस्तु है समझ ठीक से ले मनुआ।
कर विवेक व देख सभी के बीच वही तो है अगुआ।।

(153)

समाधान संगीतज्ञान से होता नहीं कभी भी है।
तत्वज्ञान और पिण्डज्ञान भी होता व्यर्थ सभी ही है।।
योगयाग में नहीं कभी भी नहीं है भोग-विरक्ति में।
समाधान तो मिलता केवल साधुजनों की संगति में।।

(154)

पंचीकरण पंच तत्व और भेद महावाक्यों का भी।
केवल संत संग से ही, समझ में आते ये सभी।।
कर संकेत कला द्वितीया की हमको जो दिखलाते हैं।
छोड़ उसे शशि सुन्दर ही हम सबके ही मन भाते हैं।।

(155)

दिसेना जनीं तेंचि शोधूनि पाहें ।
बरें पाहतां गूज तेथेंचि आहे ।।
करीं घेउं जातां कदा आडळेना ।
जनीं सर्व कोंदाटलें ते कळेना ।।

(156)

म्हणे जाणता तो जनीं मूर्ख पाहें ।
अतर्कासि तर्की असा कोण आहे ।।
जनीं मीपणें पाहतां पाहवेना ।
तया लक्षितां वेगळें राहवेना ।।

(157)

बहू शास्त्र धूंडाळितां वाड आहे ।
जया निश्चयो येक तोही न साहे ।।
मती भांडती शास्त्रबोधें विरोधें ।
गती खुंटती ज्ञानबोधें प्रबोधें ।।

(158)

श्रुती न्याय मीमांसकें तर्कशास्त्रें ।
स्मृति वेद वेदान्तवाक्यें विचित्रें ।।
स्वयें शेष मौनावला स्थीर पाहे ।
मना सर्व जाणीव सांडून राहे ।।

(155)

दिखता नहीं तत्व जो उसको शोध दृष्टिगत कर लेना।
चतुर चातुरी ऐसी हो कि प्रकट गुह्य को धर देना।।
पकड़ उसे लेना चाहे तो वह आता हाथ कभी नहीं।
आता नहीं समझ में फिर भी उससे बचता कोई नहीं।।

(156)

'जान लिया मैंने' जो ऐसा कहता है वह मूरख ही।
अतर्का ही रहे सदा ही चले न कैसा तर्क वहीं।।
अहंकार के वश में हैं जो उनको दिखता कभी नहीं।
लगा लक्ष्य उसी पर देखे तो उनसे वह भिन्न नहीं।।

(157)

शास्त्र ढूँढने की सोचें तो शास्त्रों की है भीड़ बड़ी।
जिससे निश्चय हो जाये वो वैसा तो है एक नहीं।।
स्वमत में भूले अर्थ अनेकों कर विरोध उपजाते हैं।
प्रकाश ज्ञान का होने पर मतभेद सभी मिट जाते हैं।।

(158)

न्याय तर्क वेदान्त मीमांसा औ' स्मृतियाँ सारी।
वेद श्रुति वेदान्त सभी में भरी विविधता है भारी।।
स्वयं शेष भी छोड़ इन्हें सब रहते हैं होकर के मौन।
ज्ञानपने का गर्व छोड़ मन उससे श्रेष्ठ बना है कौन।।

(159)

जेणें मक्षिका भक्षिली जाणिवेची।
तया भोजनाची रुची प्राप्ति कैंची ।।
अहंभाव ज्या मानसींचा विरेना।
तया ज्ञान हें अन्न पोटीं जिरेना ।।

(160)

नको रे मना वाद हा खेदकारी।
नको रे मना भेद नाना विकारी ।।
नको रे मना शीकऊं पूढिलांसी।
अहंभाव जों राहिला तूजपासीं ।।

(161)

अहंतागुणें सर्व ही दुःख होतें।
मुखें बोलिलें ज्ञान तें व्यर्थ जातें ।।
सुखी राहतां सर्वही सूख आहे।
अहंता तुझी तूंचि शोधूनि पाहें ।।

(162)

अहंतागुणें नीति सांडी विवेकी।
अनीतीबळें श्लाघ्यता सर्व लोकीं ।।
परी अंतरीं सर्वही साक्ष येते।
प्रमाणांतरें बुद्धि सांडूनि जाते ।।

(159)

शब्दज्ञान की मक्खी जिसके उदर तले है जा उतरी।
आत्मज्ञान-भोजन की उसको कैसे होगी कहो रुचि ॥
जिसके मन में अहंभाव का भूत नहीं भग जाता है।
उसके लिए ज्ञान-अन्न भी पेट पचा नहीं पाता है ॥

(160)

नहीं नहीं रे वाद न कर मन खेद बढाते वाद-विवाद।
भेद-बुद्धि भी नहीं चाहिए भरे हैं इसमें कई विकार ॥
सीख दूसरों को देने की मूरखता नहीं करना रे।
इससे बढ़ता अहंकार और कभी न मन भी भरता रे ॥

(161)

अहंकार के कारण सब कुछ दुःखरूप बन जाता है।
केवल मुख से बोले तो वह ज्ञान काम क्या आता है ॥
बनकर सुखी रहो मन मेरे सब ही सुख आ जायेंगे।
बिना अहंभाव के हैं जो शोध वही कर पायेंगे ॥

(162)

अहंकार के वश ज्ञानी भी छोड़ नीति को चलता है।
मार्ग अनीति का है फिर भी प्रशंसनीय बन रहता है ॥
अन्तर तो उसका भी लेकिन साक्षी सदा ही रहता है।
भ्रष्ट बुद्धि हो छोड़ प्रमाणों को वह दुःख ही सहता है ॥

(163)

देहेबुद्धिचा निश्चयो दृढ झाला ।
देहातीत तें हीत सांडीत गेला ॥
देहेबुद्धि ते आत्मबुद्धि करावी ।
सदा संगती सज्जनाची धरावी ॥

(164)

मनें कल्पिला वीषयो सोडवावा ।
मनें देव निर्गूण तो वोळखावा ॥
मनें कल्पितां कल्पना ते सरावी ।
सदा संगती सज्जनाची धरावी ॥

(165)

देहादीक प्रपंच हा चिंतियेला ।
परी अंतरीं लोभ निश्चीत ठेला ॥
हरीचिंतनें मुक्तिकांता वरावी ।
सदा संगती सज्जनाची धरावी ॥

(166)

अहंकार विस्तारला या देहाचा ।
स्त्रियापुत्रमित्रादिकें मोह त्यांचा ॥
बळें भ्रांति हे जन्मचिंता हरावी ।
सदा संगती सज्जनाची धरावी ॥

(163)

देह-बुद्धि का निश्चय जिसके मन में दृढ़ हो जाता है।
देहातीत ज्ञान आत्म का उसको कभी न भाता है।।
देह-बुद्धि को छोड़ हमें अब आत्म-बुद्धि अपनाना है।
इसीलिए सज्जनों के संग जीवन हमें बिताना है।।

(164)

मन की विषय-कल्पना को तो हटा दूर कर देना है।
निराकार जो रूप देव का समझ उसे ही लेना है।।
इतर कल्पना भी जो मन की उसको भी बिसराना है।
इसीलिए सज्जनों के संग जीवन हमें बिताना है।।

(165)

देहादिक का चिन्तन मन में जब तक चलता रहता है।
निश्चय मानो तब तक मन में लोभ सदा ही बसता है।।
हरि चिन्तन कर मुक्ति-वधू को अपना हमें बनाना है।
इसीलिए सज्जनों के संग जीवन हमें बिताना है।।

(166)

देहभाव से अहंकार भी बहुत अधिक बढ़ जाता है।
दारा सुत व मित्र आदि का मन में मोह समाता है।।
पर भ्रामक हैं जान हमें छुटकारा इनसे पाना है।
इसीलिए सज्जनों के संग जीवन हमें बिताना है।।

(167)

बरा निश्चयो शाश्वताचा करावा ।
म्हणे दास संदेह तो वीसरावा ।।
घडीनें घडी सार्थकाची करावी ।
सदा संगती सज्जनाची धरावी ।।

(168)

करी वृत्ति जो संत तो संत जाणा ।
दुराशागुणें जो नव्हे दैन्यवाणा ।।
उपाधी देहेबुद्धितें वाढवीते ।
परी सज्जना केविं बाधूं शके ते ।।

(169)

नसे अंत आनंत संतां पुसावा ।
अहंकार विस्तार हा नीरसावा ।।
गुणेंवीण निर्गूण तो आठवावा ।
देहेबुद्धिचा आठवू नाठवावा ।।

(170)

देहबुद्धि हे ज्ञानबोधें त्यजावी ।
विवेकें तये वस्तुची भेटि घ्यावी ।।
तदाकार हे वृत्ति नाहीं स्वभावें ।
म्हणोनी सदा तेंचि शोधीत जावें ।।

(167)

उत्तम निश्चय शाश्वत का ही धारण उसको करना है।
कहे दास सन्देह मनस का उसको हमें बिसरना है ।।
जीवन की जो थोड़ी घड़ियाँ बना सार्थक जाना है।
इसीलिए सज्जनों के संग जीवन हमें बिताना है ।।

(168)

कर सकता जो शांत वृत्ति को वही संत कहलाता है।
हुई दुराशा नष्ट सभी कब वाणी में दैन्य समाता है ।।
देह बुद्धि के कारण ही तो वृद्धि उपाधि पाती है।
पर सज्जन को बाँध सके वह शक्ति उसे कब आती है ।।

(169)

जिसका मिलता अंत नहीं है मर्म जानते उसका सन्त।
विस्तार वृथा है अहंभाव का उसका तो वे करते अन्त ।।
रहित गुणों से है जो निर्गुण उसका तो तूँ कर सुमिरन।
देहबुद्धि की आती लहरें उनका भी करना निरसन ।।

(170)

ज्ञानबोध के द्वारा ही तूँ देह-बुद्धि का कर दे त्याग।
कर विवेक व इसी तरह से आत्म तत्व को कर ले प्राप्त ।।
तदाकार की वृत्ति नहीं है सहज सुलभ और स्वाभाविक।
इसीलिए तो शोध उसी की करनी होगी सर्वाधिक ।।

(171)

असे सार साचार तें चोरलेंसे।
इंहीं लोचनीं पाहतां दृश्य भासे ।।
निराभास निर्गूण तें आकळेना।
अहंतागुणें कल्पितांही कळेना ।।

(172)

स्फुरे वीषयीं कल्पना ते अविद्या।
स्फुरे ब्रह्म रे जाण माया सुविद्या ।।
मुळीं कल्पना दो रुपें तेचि जाली।
विवेकें तरी सस्वरूपीं मिळाली ।।

(173)

स्वरूपीं उदेला अहंकार राहो।
तेणें सर्व आच्छादिलें व्योम पाहो ।।
दिशा पाहतां ते निशा वाढताहे।
विवेकें विचारें विवंचूनि पाहें ।।

(174)

जया चक्षुनें लक्षितां लक्षवेना।
भवा भक्षिता रक्षितां रक्षवेना ।।
क्षयातीत तो अक्षयी मोक्ष देतो।
दयादक्ष तो साक्षिनें पक्ष घेतो ।।

(171)

सार रूप जो परब्रह्म है गुप्त बना ही रहता वह।
चर्मचक्षु से देखें तब तो जगत दिखाई देता यह ।।
जिसका भास नहीं वह निर्गुण नहीं समझ में आ पाता।
वशीभूत हो अहंकार के जुड़े कल्पना से नाता ।।

(172)

विषयों की जो करे कल्पना वही अविद्या कहलाती।
ब्रह्मोन्मुख करे जो माया वही सुविद्या बन जाती ।।
इसी भाँति ये मूल कल्पना दो भागों में बँट जाती।
बल विवेक का पाकर के ही सस्वरूप में मिल पाती ।।

(173)

आत्मज्ञान के नभ में ही जब उदय अहम् का हो जाता।
ढक लेता है पूरे नभ को नहीं कहीं कुछ रह पाता ।।
उसके कारण दिशा लुप्त हो रात्रि का तम बढ़ जाता।
यदि हो विवेक विचार विवंचन तो ही है वह कट पाता ।।

(174)

आँख देखना चाहे तो वह रूप आँख में नहीं आता।
करे जो भक्षण पूरे भव का रक्षण किससे हो पाता ।।
स्वयम् नाश से परे अनश्वर मोक्ष सदा वह देता है।
साक्ष्य सभी का होकर के भी पक्ष भक्त का लेता है ।।

(175)

विधी निर्मिता लीहितो सर्व भाळीं।
परी लीहिता कोण त्याचे कपाळीं ।।
हरू जाळितो लोक संहारकाळीं।
परी सेवटीं शंकरा कोण जाळी ।।

(176)

जनीं द्वादशादित्य हे रुद्र अक्रा।
असंख्यात संख्या करी कोण शक्रा ।।
जगीं देव धुंडाळितां आढळेना।
जनीं मुख्य तो कोण कैसा कळेना ।।

(177)

तुटेना फुटेना कदा देवराणा।
चळेना ढळेना कदा दैन्यवाणा ।।
कळेना कळेना कदा लोचनासी।
वसेना दिसेना जगीं मीपणासी ।।

(178)

जया मानला देव तो पूजिताहे।
परी देव शोधूनि कोणी न पाहे ।।
जगीं पाहतां देव कोट्यानुकोटी।
जया मानली भक्ति जे तेचि मोठी ।।

(175)

ब्रह्मदेव ही भाग्य सभी का कहते हैं लिख जाते हैं।
स्वयम् उन्हीं का भाग्य ललाट पर कहो कौन लिख जाते हैं।।
संहार काल में शंकर ही तो जला सभी को जाते हैं।
किन्तु अन्त में स्वयम् उन्हीं को कौन जलाने आते हैं।।

(176)

द्वादश सूर्य प्रसिद्ध हैं जग में, हैं एकादश रुद्र भी।
असंख्य हुए हैं कैसी संख्या कहो वहाँ पर इन्द्र की।।
देव-देवियाँ जग में नाना उनका अन्त नहीं आता।
मुख्य कहें पर किसको कैसे नहीं समझ में आ पाता।।

(177)

देवराज वे ऐसे जिनमें टूट-फूट का नाम नहीं।
नहीं हिलेंगे, नहीं डिगेंगे दीन-वाणी का काम नहीं।।
चर्म-चक्षु से नहीं कभी भी दृष्टि में वे आ सकते।
जो हैं अहंकार के वश में कभी न उनको पा सकते।।

(178)

मन-माने को देव जान कर पूजा करते जाते हैं।
नहीं कभी भी खरे देव को खोज देखना चाहते हैं।।
जग में देखें तो फिर नाना देव-देवता मिल जाते।
जिसकी मन में जैसी भक्ति श्रेष्ठ उसी को बतलाते।।

(179)

तिन्ही लोक जेथूनि निर्माण जाले ।
तया देवरायासि कोणी न बोले ।।
जगीं थोरला देव तो चोरलासे ।
गुरूवीण तो सर्वथाही न दीसे ।।

(180)

गुरू पाहतां पाहतां लक्ष कोटी ।
बहूसाल मंत्रावळी शक्ति मोठी ।।
मनीं कामना चेटकें धातमाता ।
जनीं व्यर्थ रे तो नव्हे मुक्तिदाता ।।

(181)

नव्हे चेटकी चाळकू द्रव्यभोंदू ।
नव्हे निंदकू मत्सरू भक्तिमंदू ।।
नव्हे उन्मतू वेसनी संगबाधू ।
जगीं ज्ञानिया तोचि साधू अगाधू ।।

(182)

नव्हे वाउगी चाहुटी काम पोटीं ।
क्रियेवीण वाचाळता तेचि मोठी ।।
मुखीं बोलिल्यासारखें चालताहे ।
मना सद्‌गुरू तोचि शोधूनि पाहें ।।

(179)

जिसके द्वारा हुए हैं निर्मित देखो ये तीनों ही लोक।
देवराज हैं वे ही उनको नहीं जानते सब ही लोग॥
श्रेष्ठ देव हैं वे ही जग में पर रहते हैं गुप्त सदा।
कृपा गुरु की हुए बिना तो होते दर्शन नहीं कदा॥

(180)

निकलें करने खोज गुरु की तो मिल जावें लाखों ही।
मंत्र अनेकों, भारी शक्ति, जिनकी जग में साख बड़ी॥
पर मन भरा कामनाओं से जादू-टोना करते हैं।
मुक्तिदाता नहीं होते वे, व्यर्थ बोझ को धरते हैं॥

(181)

धन के लोभी मन के चंचल जग जादू से ठगते हैं।
भक्ति नहीं, मत्सर व मद है, निन्दा सबकी करते हैं॥
उन्मत्त व चालाक बड़े वे कैसे साधू बन पायें।
जिनको सच्चा ज्ञान हुआ है वे ही सद्गुरु कहलायें॥

(182)

मन में बसी वासना पर वह बातें लम्बी करता है।
करणी बिन की कथनी में ही जी उसका जा रमता है॥
मुख से बोले वैसे ही जो काम सदा ही करते हैं।
ऐसे सद्गुरु खोज करें तब भवसागर से तरते हैं॥

(183)

जनीं भक्त ज्ञानी विवेकी विरागी।
कृपाळू मनस्वी क्षमावंत योगी॥
प्रभू दक्ष व्युत्पन्न चातुर्य जाणे।
तयाचेनि योगें समाधान बाणे॥

(184)

नव्हे तेंचि जालें नसे तेंचि आलें।
कळों लागलें सज्जनाचेनि बोलें॥
अनिर्वाच्य तें वाच्य वाचे वदावें।
मना संत आनंत शोधीत जावें॥

(185)

लपावें अती आदरें रामरूपीं।
भयातीत निश्चीत ये सस्वरूपीं॥
कदा तो जनीं पाहतां ही दिसेना।
सदा ऐक्य तो भिन्नभावें वसेना॥

(186)

सदा सर्वदा राम सन्नीध आहे।
मना सज्जना सत्य शोधून पाहें॥
अखंडीत भेटी रघूराजयोगू।
मना सांडिं रे मीपणाचा (वि)योगू॥

(183)

ज्ञान विवेक वैराग्य लिये जो भक्ति को दृढ़ करता है ।
कृपावन्त वह क्षमावन्त वह योग ईश से धरता है ।।
प्रभू-सेवा में दक्ष सदा वह चातुर्यपूर्ण विचक्षण है ।
समाधान तो ऐसे गुरु से मिलता वहीं तत्क्षण है ।।

(184)

नहीं कभी भी था वह कैसे बनता औ' आ जाता है ।
सुनें वचन जब सज्जनजन के तभी समझ में आता है ।।
अनिर्वाच्य जो सदा कहाता वाच्य उसे ही करना है ।
हे मनवा संत-संग से, शोध अनन्त की करना है ।।

(185)

अति आदर से राम-रूप को देख वहीं बस जाते हैं ।
भयातीत हो आत्मरूप में लीन वे ही हो पाते हैं ।।
जन-जन उनको देखे तो वे नहीं दिखाई देते हैं ।
ऐक्य-भाव से रहे सदा तो भिन्न भाव को खोते हैं ।।

(186)

श्रीराघव तो सदा सर्वदा निकट तुम्हारे रहते हैं ।
हे सज्जन मन खोज उन्हीं को इसीलिए तो कहते हैं ।।
भेंट तुम्हारी रघुराज से बने अखंडित और अनन्त ।
अहम् भाव को छोड़ इसी से मिल जायेंगे श्रीभगवन्त ।।

(187)

भुतें पिंड ब्रह्मांड हें ऐक्य आहे ।
परी सर्वही सस्वरूपीं न साहे ॥
मना भासलें सर्व कांहीं पहावें ।
परी संग सोडूनि सूखी रहावें ॥

(188)

देहेभान हें ज्ञानशस्त्रें खुडावें ।
विदेहीपणें भक्तिमार्गेंचि जावें ॥
विरक्तीबळें निंद्य सर्वै त्यजावें ।
परी संग सोडूनि सूखें रहावें ॥

(189)

मही निर्मिली देव तो ओळखावा ।
जया पाहतां मोक्ष तत्काळ जीवा ॥
तया निर्गुणालागिं गुणीं पहावें ।
परी संग सोडूनि सूखें रहावें ॥

(190)

नव्हे कार्यकर्ता नव्हे सृष्टिभर्ता ।
परेहूनि पर्ता न लिंपे विवर्ता ॥
तया निर्विकल्पासि कल्पीत जावें ।
परी संग सोडूनि सूखें रहावें ॥

(187)

पिण्ड और ब्रह्माण्ड सभी में पंचभूत ही बसते हैं।
किन्तु सभी वे आत्मरूप में नहीं कभी मिल सकते हैं॥
जो कुछ दिखता देख उन्हें पर भासमान ही जाना कर।
हे मन उनका साथ छोड़कर सुख से जीवन अपना भर॥

(188)

देहभाव को ज्ञान-शस्त्र से छिन्न-भिन्न कर देना रे।
बन कर देहातीत विदेही भक्ति मार्ग पर चलना रे॥
विरक्त भाव का बल पाकर के निन्दनीय सब त्यागा कर।
संग छोड़कर बनो निसंगी सुख से जीवन अपना भर॥

(189)

निर्माण किया धरती का जिसने उसी देव को पहचानो।
हुआ मोक्ष तत्काल उसी के दर्शन से ऐसा जानो॥
सगुण रूप वह किन्तु मूल में निर्गुण ही है माना कर।
हे मन माया-संग त्याग कर सुख से जीवन अपना भर॥

(190)

कर्ता नहीं नहीं है भर्ता सृष्टि का वह कभी नहीं।
परे विश्व के रहता है वह होता उसमें लिप्त नहीं॥
निर्विकल्प है देव, कल्पना उसकी ही तूँ करता चल।
अहम्-भाव का संग छोड़कर सुख से जीवन अपना भर॥

(191)

देहेबुद्धिचा निश्चयो ज्या ढळेना ।
तया ज्ञान कल्पांतकाळीं कळेना ।।
परब्रह्म तें मीपणें आकळेना ।
मनीं शून्य अज्ञान हें मावळेना ।।

(192)

मना ना कळे ना ढळे रूप ज्याचें ।
दुजेवीण तें ध्यान सर्वोत्तमाचें ।।
तया खूण ते हीन दृष्टान्त पाहें ।
तेथें संग निःसंग दोनी न साहे ।।

(193)

नव्हे जाणता नेणता देवराणा ।
न ये वर्णितां वेदशास्त्रां पुराणां ।।
नव्हे दृश्य अदृश्य साक्षी तयाचा ।
श्रुती नेणती नेणती अंत त्याचा ।।

(194)

वसे हृदयीं देव तो कोण कैसा ।
पुसे आदरें साधकू प्रश्न ऐसा ।।
देहे टाकितां देव कोठें रहातो ।
परी मागुता ठाव कोठें पहातो ।।

(191)

जिसके मन से देह-बुद्धि का निश्चय टल कर गया नहीं।
बीते युग पर युग तो भी क्या ज्ञान उसे है हुआ कहीं ।।
अहंकार से पीड़ित है जो ब्रह्म-ज्ञान नहीं पा सकता।
शून्य भाव में रहे फँसा अज्ञान न उसका जा सकता ।।

(192)

आता नहीं समझ में मन के होता जिसका अस्त नहीं।
सर्वोत्तम का रूप निरूपम उस जैसा तो कहीं नहीं ।।
आया रहस्य समझ में उसका हीन सभी दृष्टान्त बने।
संग नहीं निसंग नहीं वहाँ ये दोनों ही व्यर्थ बने ।।

(193)

जाना या अनजाना है यह नहीं ऐसा कुछ कह सकते।
शास्त्र वेद और पुराण सभी भी वर्णन करने में थकते ।।
दृश्य नहीं अदृश्य नहीं वह साक्षी तो उन सबका है।
स्वयम् श्रुति भी नहीं जानती अन्त कहाँ पर उसका है ।।

(194)

हृदय बीच जो बसता है वो देव कौनसा कैसा है।
आदरपूर्वक साधक कहता प्रश्न हमारा ऐसा है ।।
जाती देह छूट कर जब वह देव कहाँ पर रहता है।
आगे फिर से कैसे किसके पास दिखाई देता है ।।

(195)

वसे हृदयीं देव तो जाण ऐसा।
नभाचेपरी व्यापकू जाण तैसा॥
सदा संचला येत ना जात कांहीं।
तयावीण कोठें रिता ठाव नाहीं॥

(196)

नभीं वावरे जो अणुरेणु कांहीं।
रिता ठाव या राघवेंवीण नाहीं॥
तया पाहतां पाहतां तेंचि जालें।
तेथें लक्ष आलक्ष सर्वै बुडालें॥

(197)

नभासारिखें रूप या राघवाचें।
मनीं चिंतितां मूळ तूटे भवाचें॥
तया पाहतां देहबुद्धी उरेना।
सदा सर्वदा आर्त पोटीं पुरेना॥

(198)

नभें व्यापिलें सर्व सृष्टीस आहे।
रघूनायका ऊपमा ते न साहे॥
दुजेवीण जो तोचि तो हा स्वभावें।
तया व्यापकू व्यर्थ कैसें म्हणावें॥

(195)

हृदयवास जब इसका कहते मन में तब यह जाना कर।
नभ जैसा ही व्यापक है वह सत्य बात यह माना कर॥
सभी जगह संचार सदा ही, आता है न जाता है।
रिक्त नहीं है ठाँव कोई भी सबमें वही समाता है॥

(196)

अणु रेणु में जो नभ से भी सूक्ष्म बन कर बसता है।
क्या राघव के बिना कोई भी ठाँव रिक्त रह सकता है॥
लक्ष्य उसी पर देते देते वो ही हम बन जाते हैं।
इतर लक्ष्यालक्ष्य सभी ही डूब उसी में जाते हैं॥

(197)

हे मन राघव रूप देख ले व्यापक तो नभ जैसा है।
चिन्तन से संसार-व्यथा का मूल तोड़ दे ऐसा है॥
दर्शन उसका करते-करते देहबुद्धि नहीं रहती शेष।
यही भाव रहता है देखूँ नित प्रति इसकी ओर विशेष॥

(198)

सारी सृष्टि यहाँ देख लो नभ से ही है व्याप्त हुई।
उपमा उसकी भी राघव से नहीं कभी पर्याप्त हुई॥
वह तो केवल एक स्वयं है और दूसरा नहीं कोई।
व्यर्थ उसे क्यों व्यापक कहना व्याप्त नहीं है जब कोई॥

(199)

अती जीर्ण विस्तीर्ण तें रुप आहे ।
तेथें तर्कसंपर्क तोही न साहे ।।
अती गूढ तें दृढ तत्काळ सोपें ।
दुजेवीण जे खूण स्वामीप्रतापें ।।

(200)

कळे आकळे रूप तें ज्ञान होतां ।
तेथें आटली सर्वसाक्षी अवस्था ।।
मना उन्मनीं शब्द कुंठीत राहे ।
तो गे तोचि तो राम सर्वत्र पाहे ।।

(201)

कदा ओळखीमाजिं दूजे दिसेना ।
मनीं मानसीं द्वैत कांही वसेना ।।
बहूतां दिसां आपुली भेटि जाली ।
विदेहीपणें सर्व काया निवाली ।।

(202)

मना गूज रे तूज हें प्राप्त जालें ।
परी अंतरीं पाहिजे यत्न केले ।।
सदा श्रवणें पाविजे निश्चयासी ।
धरीं सज्जनसंगती धन्य होसी ।।

(199)

अति विस्तीर्ण रूप है उसका जीर्ण पुरातन कहलाता।
अतर्का ही रहे सदा ही नहीं तर्क से मिल पाता।।
अति ही गूढ़ परन्तु सत्ता स्वामी की देखो ऐसी।
सुलभ बनाते अनन्य रूप को कृपा कहो करते कैसी।।

(200)

इसी रूप को देख समझना ज्ञान यही कहलाता है।
सर्वसाक्ष्य का रूप कहो तो वहाँ कहाँ रह पाता है।।
वाणी कुण्ठित हो जाती व मन उन्मन बन जाता है।
रूप भरा सर्वत्र एक ही राम एक रह जाता है।।

(201)

सत्स्वरूप को जान लिया तब इतर नहीं कुछ रहता है।
मन का सारा द्वैतभाव तब जा उसमें ही बहता है।।
जन्म-जन्म के बाद कहीं यह भेंट अभी हो पाई है।
करके प्राप्त विदेह अवस्था शीतलता अब आई है।।

(202)

हे मन गुप्त रहस्य को पाकर तुमने धन्य किया जीवन।
फिर भी यत्न अनेकों करना रहे सदा यह जीवन-क्रम।।
सदा श्रवण आदि के द्वारा निश्चय आत्मा का कर ले।
सज्जनजन की संगति धरके जीवन को सुख से भरले।।

(203)

मना सर्वही संग सोडूनि द्यावा।
अती आदरें सज्जनाचा धरावा ॥
जयाचेनि संगें महादुःख भंगे।
जनीं साधनेंवीण सन्मार्ग लागे ॥

(204)

मना संग हा सर्व संगास तोडी।
मना संग हा मोक्ष तत्काळ जोडी ॥
मना संग हा साधकां शीघ्र सोडी।
मना संग हा द्वैत निःशेष मोडी।

(205)

मनाचीं शतें ऐकतां दोष जाती।
मतीमंद ते साधनायोग्य होती ॥
चढे ज्ञान वैराग्य सामर्थ्य अंगीं।
म्हणे दास विश्वासतां मुक्ति भोगी ॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

(203)

रे मन इतर संग सभी को छोड़ दूर कर दे रे तूँ।
अति ही आदर से मन मेरे सन्तों का संग धरले तूँ।।
जिनके संग से टूट देख तूँ महादुःख भी जाता है।
होता नहीं कष्ट साधन का परमारथ-पथ पाता है।।

(204)

हे मन यह संग ऐसा है कि अन्य संग तो जाते टूट।
और तत्क्षण मिल जाता है संग मोक्ष का सदा अटूट।।
हे मन यही संग साधक को छुटकारा दिलवाता है।
इसी संग से द्वैतभाव भी मूलसहित कट जाता है।।

(205)

इन श्लोकों को सुनने भर से दोष सभी मिट जाते हैं।
मतिमंद भी साधन करने की शक्ति पा जाते हैं।।
अंग अंग पर इसके बल से ज्ञान वैराग्य चढ़ जाते हैं।
कहे दास विश्वास धरे तो मुक्ति भी पा जाते हैं।।

"इति शुभम्"

।।जय जय रघुवीर समर्थ।।